अध्याय –षष्ठम्

स्वास्थ्य और योग

6.1. स्वास्थ्य–

दुनियाँ भर की संस्कृतियों में स्वास्थ्य को अनन्तकाल से ही अभिन्न अंग माना जा रहा है। हर कोई स्वस्थ रहना चाहता है। कहा भी गया है कि ''पहला सुख निरोगी काया'' अगर शरीर स्वस्थ नहीं है तो सारे सुख फीके पड़ जाते हैं। अग्रेंजी में भी कहावत है कि"Health is Wealth" स्वास्थ्य ही धन है। इस प्रकार स्वास्थ्य के प्रति सभी संस्कृतियों का आकर्षण हमेषा से रहा है। गरीब, अमीर, राजा, रंक, स्त्री, पुरूष, बूढ़ा, जवान सभी स्वस्थ बना रहना चाहते हैं। लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण बात है कि स्वास्थ्य है क्या, किसे कहते हैं। पूर्ण स्वास्थ्य यह एक रहस्यमय प्रष्न है। सामान्यतया बिमारियां ना हों। प्राचीन भारतीय एवं ग्रीक विचारकों ने यह अवधारणा व्यक्त की कि जब भी शारीरिक समरसता में कोई असंतुलित परिवर्तन होता है तो वह किसी रोग के रूप में प्रकट होता है और स्वास्थ्य कमजोर होता है।

जब भी हमारे स्वास्थ्य में कोई गिरावट आती है। कोई बिमारी आती है तो हमारा पूरा ध्यान उसके निदान के लिए आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों का सहारा लेते हैं और वर्तमान चिकित्सा पद्धतियों में हमारी मदद करती है।

लेकिन इन चिकित्सा पद्धतियों का सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य से न होकर केवल बिमारी से होता है और हम उस रोग से निजात पाकर अपने आपको स्वस्थ अनुभव करते हैं। इसी कारण हम आज स्वास्थ्य से अनजान बने हुए हैं। इर कोई बिमारी न होने को ही स्वास्थ्य समझता है। रोगों की पहचान व उनकी तीव्रता मापने के लिए हजारों की संख्या में औजार और परीक्षण, उपलब्ध हैं लेकिन स्वास्थ्य का स्तर नापने के पैमाने और विधियों की संख्या आज भी नहीं के बराबर है। इसलिये इस क्षेत्र में विकास करने की अति आवष्यकता है ताकि स्वास्थ्य को सही मायने में जाना जा सके व उसका विकास किया जा सके।

आधुनिक आंकड़ों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वास्थ्य के बारे में केवल हमारी अज्ञानता ही इसकी उपेक्षा का कारण नहीं है बल्कि जितना महत्व हम धन, मानप्रतिष्ठा, अधिकार, दिखावे आदि को देते हैं उसका दसवाँ हिस्सा भी हम स्वास्थ्य को नहीं देते। प्रथम विष्वयुद्ध के बाद जब राष्ट्रों के एक समूह की घोषणा का मसौदा तैयार किया था तो उसमें स्वास्थ्य का जिकर तक नहीं था। इसी तरह द्वितीय विष्वयुद्ध के बाद जब संयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणा पत्र तैयार किया उसमें भी स्वास्थ्य का उल्लेख नहीं था। लेकिन परिस्थितियों में बदलाव आया और नवीन परिवेष में जागृति आई है और एक दषक से स्वास्थ्य के प्रति आष्चर्यजनकजागरूकता आई है और अब तो स्वास्थ्य को मूलभूत मानवाधिकार के रूप में पेष किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। पूरी दुनियाँ में स्वास्थ्य को सामाजिक आवष्यकता के रूप में मानने पर बल दिया जा रहा है और माना जा रहा है कि लम्बी उम्र के बजाय स्वस्थ जीवन पर बल दिया जाये।

सन् 1977 में विष्व स्वास्थ्य सभा द्वारा यह निर्णय लिया गया था कि आने वाले समय में सभी देषों की सरकारों तथा विष्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के द्वारा यह सुनिष्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक व सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन के साथ स्वस्थ जीवन जीने का मौका मिल सके तथा सामाजिक विकास के लिए एक नये युग की स्थापना हो सके।

6.1.1. स्वास्थ्य की अवधारणाः—

स्वास्थ्य को समझने के लिए हमें इससे जुड़ी विभिन्न अवधारणाओं को समझना होगा, कारण कि इसे सामाजिक जीवन के अलग—अलग क्षेत्रों में अलग—अलग परिभाषा एवं सिद्धान्तों के रूप में जाना जाता है। स्वास्थ्य में नये—नये शोध उपलब्धियों के कारण इसमें सार्थक परिणाम आये हैं और अब तो स्वास्थ्य को मानव जीवन की गुणवता का आधार माना जाने लगा है। इसलिए सामाजिक जीवन में इसकी व्याख्या को समझना महत्वपूर्ण होगा। स्वास्थ्य की चार निम्नलिखित अवधारणायें मानी जाती हैं।

(अ) जैव चिकित्सकीय अवधारणा।

(ब) परिस्थितिकीय अवधारणा।

(स) मनौसामाजिक अवधारणा।

(द) समग्र स्वास्थ्य अवधारणा

(अ)जैव चिकित्सकीय अवधारणा—चली आ रही अवधारणा के अनुसार रोग न होने की स्थिति को स्वास्थ्य कहा जाता है। इस विचारधारा को ''जैव चिकित्सकीय अवधारणा'' के नाम से जाना जाता है। इसी के आधार पर ''रोगों के रोगाणु सिद्धांत'' का विकास हुआ। इस अवधारणा के अनुसार मषीन में जब कोई खराबी आती है तो वह बिमारी या रोग के रूप में सामने आती है। उस समय चिकित्सक का काम उसकी खराबी की मरम्मत करना होता है। इस प्रकार वर्तमान चिकित्सा विज्ञान का उददे्ष्य औषधियों तक ही सीमित है। इसके बाद भी वर्तमान चिकित्सा पद्धति अनेक बिमारियों का ईलाज करने में असमर्थ है। जैसे– मानसिक रोग, कुपोषण, नषे की लत आदि।

(ब)पारिस्थितिकीय अवधारणा—जब एक चिकित्सा पद्धति असफल हुई तो दूसरी अवधारणा का जन्म हुआ तब परिस्थितिनुसार विद्वानों ने एक ऐसी आकर्षक परिकल्पना पेष की और उन्होंने बताया कि मानव व पर्यावरण के बीच एक शक्तिषाली संतुलन की अवस्था है और बिमारी होने का मूल कारण तालमेल न होने का ही परिणाम है। ड्यूबोस के अनुसार स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें असुविधा तथा दर्द आदि नाम मात्र के होते हैं। अगर पर्यावरण के साथ लगातार तालमेल बना रहे तो सभी शारीरिक व मानसिक क्रियाऐं, अच्छी तरह चलती रहती हैं। इस अवधारणा के द्वारा दो मुख्य मुद्दों पर विषेष रूप से चर्चा की जाती है।

- अपूर्ण मानव
- अपूर्ण पर्यावरण

अपूर्ण मानव का अर्थ है मानव का असंतुलित व्यवहार तथा अपूर्ण पर्यावरण का मतलब है पर्यावरण के आवष्यक कारकों का असंतुलन इन दोनों के असंतुलन के कारण ही स्वास्थ्य को नुकसान होता है।

(स)मनोसामाजिक अवधारणा—स्वास्थ्य का दायरा केवल जैव चिकित्सा तक ही सीमित नहीं है। बल्कि इस पर मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक राजनीतिक व आर्थिक कारकों का भी काफी प्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिक स्थितियां और सोच दैनिक चर्चा पर प्रभाव डालती हैं तथा सांस्कृतिक रीति—रिवाज, घीसी—पिटी लीक पर चलने को विवष कर देते हैं। स्वास्थ्य जैविक व सामाजिक घटकों से समान रूप से प्रभावित होता है।

(द)समग्र अवधारणा—अगर तीनों अवधारणों को एक साथ मिला दें तो स्वास्थ्य की समग्र अवधारणा सामने आती है। इसके अन्तर्गत राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक कारकों को मान्यता दी जाती है। एक ऐसी बहुआयामी प्रणाली जिसमें सभी घटकों को साथ लेकर मनुष्य के सम्पूर्ण स्वास्थ्य के रूप में देखा जा सकता है। इसीलिए कहा भी गया है कि ''स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर'' स्वस्थ वातावरण व स्वस्थ परिवार में ही रह सकता है।

समग्र विचार धारा के अनुसार सभी घटक जैसे— षिक्षा आवास, उद्योग, पषुपालन, भोजन सामाजिक और सार्वजनिक कार्य स्वास्थ्य को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। लेकिन इन सबका एक ही उद्देष्य होता है स्वास्थ्य की रक्षा करना।

6.1.2. स्वास्थ्य की परिभाषाः—

स्वास्थ्य के बारे में सभी लोग जानते हैं लेकिन परिभाषित करना कठिन सा लगता है। लेकिन फिर भी अनेक संस्थाओं, प्रचारकों, मनोवैज्ञानिकों व विचारकों ने समय—समय पर स्वास्थ्य की अलग—अलग परिभाषाऐं दी हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाऐं निम्न प्रकार हैं।

(अ)बेब्सटर के अनुसार ‘‘षरीर, मन और चेतना की ओजस्वी अवस्था जिसमें समस्त शारीरिक बिमारी और दर्द के अभाव की स्थिति को स्वास्थ्य कहा गया है।

(ब)विश्व स्वास्थ्य संगठन रिपोर्ट न. (137) सन् 1957 के अनुसार ‘‘किसी आनुवांषिकी और पर्यावरणीय स्थिति में मनुष्य के जीवन चर्चा का ऐसा गुणवत्तापूर्ण स्तर जिसमें उसके द्वारा सारे कार्य यथोचित समय और सुचारू रूप से सम्पादित किया जा सकें स्वास्थ्य कहलाता है।

(स)अक्सफोर्ट इंग्लिश कोष के अनुसार ‘‘षरीर व मन की तेजपूर्ण स्थिति ऐसी अवस्था जिसमें समस्त शारीरिक व मानसिक कार्य समय से व पूरी क्षमता से सम्पादित हो रहे हों, ऐसी अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं।

(द)पार्किन्स के अनुसार ‘‘शरीर की रचना और क्रिया की ऐसी सापेक्ष साम्यावस्था है जो किसी भी प्रतिकूल स्थिति में शरीर को सफलतापूर्वक संतुलित एवं जीवन्त रखती है, स्वास्थ्य कहलाती है। स्वस्थ शरीर के आन्तरिक अवयवों और इन्हें आहत करने वाले कारकों के बीच निष्क्रय प्रक्रिया न होकर दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की सक्रिय एवं कारगर प्रक्रिया है।

(य)ड्यूबोस, आर, 1968 के अनुसार ‘‘जीवन का ऐसा उपक्रम जो व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों और अपूर्ण विष्व में सुखपूर्वक जीने का मार्ग प्रषस्त करता है, स्वास्थ्य कहलाता है।

(र)विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ‘‘1948 में अपने संविधान की प्रस्तावना में स्वास्थ्य की जो परिभाषा दी वह सर्वमान्य तथा इस प्रकार है। स्वास्थ्य सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक संतुलन की अवस्था है केवल रोग या अपंगता का अभाव नहीं’’ लेकिन कुछ समय पहले इस परिभाषा को थोड़ा संषोधित करके इसको व्यापक बना दिया गया है और वह इस प्रकार है कि शारीरिक, मानसिक और सामाजिक संतुलन के साथ आर्थिक एवं सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन को स्वास्थ्य कहा गया है। फिर भी कुछ लोक इस

को व्यवहारिक न मानकर आदर्षवादी मानते हैं। उनका मानना है कि स्वास्थ्य कोई अवस्था नहीं बल्कि यह तो सतत् परिवर्तनषील परिस्थितियों के साथ ताल–मेल बढ़ाने की कला और क्षमता है। इसको अप्रासंगिक भी मानते हैं। क्योंकि शायद ही कोई होगा जो इसकी बातों पर खरा उतरता है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो सम्पूर्ण तथा जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रिया कलापों के दृष्टिकोण से पूर्ण हो इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति स्वस्थ नहीं है। लेकिन सब बातों को देखा जाए तो विष्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा दी गई स्वास्थ्य की परिभाषा ही उचित एवं मान्य है।

6.1.3. स्वास्थ्य का दर्शन (Philosophy of Health)

कुछ वर्षों से स्वास्थ्य कोनवीन रूप से मान्यता दी गई है इसके मुख्य बिन्दू इस प्रकार हैं–

- स्वास्थ्य एक मूलभूत मानवाधिकार है।
- स्वास्थ्य विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।
- स्वास्थ्य उपयोगी जीवन की पहचान है।
- स्वास्थ्य की अभिरक्षा एक महत्वपूर्ण सामाजिक विनिवेष है।
- स्वास्थ्य व्यक्ति, समाज राष्ट्र और विष्व की सामूहिक जिम्मेदारी है।
- स्वास्थ्य सार्थक एवं गुणवत्ता पूर्ण जीवन का केन्द्र बिन्दु है।
- स्वास्थ्य सारे विष्व का लक्ष्य है।
- स्वास्थ्य अवधारणा सम्प्रदाय या जाति–धर्म विहीन है।

स्वास्थ्य दर्षन में व्याप्त सिद्धान्त केवल व्यक्ति विषेष के लिए ही नहीं बल्कि पूरी मानव जाति के लिए मानवता के विकास के आधार हैं।

6.1.4. स्वास्थ्य के आयाम–

विष्व के अनेक दार्षनिकों, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों ने स्वास्थ्य के कई प्रकार के आयाम बताये हैं लेकिन इन में मुख्य रूप से तीन ही आयाम सर्वमान्य हैं। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक। मनौविज्ञान भी मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की

बात करता है और उसके अनुसार वह शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास को ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास मानता है और इसी को वह सम्पूर्ण स्वास्थ्य कहता है।

इसी प्रकार योग भी योगी अरविन्दो के अनुसार ''सर्वांगिक व्यक्तित्व विकास ही सम्पूर्ण योग है। अर्थात् वह विद्यायोग है जिसके द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास, ''षारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास हो सकें''।

6.2. शारीरिक स्वास्थ्य–

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार ''षारीरिक, मानसिक बौद्धिक एवं भावनात्मक आयामों में भावनात्मक आयाम सबसे अधिक प्रभावषाली है और इसके कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य और व्यक्तित्व में आमूलचूल परिवर्तन देखने में आता है।

(अ)शारीरिक आयाम (Physical Dimension)किसी भी व्यक्ति के लिए स्वच्छ त्वचा, चमकदार आँखें, काले–बाल, पुष्ट शरीर, समुचित रूप से भूख–प्यास का लगना, गहरी निद्रा लयबद्ध श्वास–प्रष्वास, समयपर पेट साफ होना आदि अनिवार्य हैं एवं सारे अंग सारी इन्द्रियां सही तरह से काम करें, रक्तचाप, नाड़ीदर, श्वसनदर, BMIतथा ऊंचाई के अनुसार वजन हो। ये सारे शारीरिक स्वास्थ्य के मापक हैं। इसी प्रकार शरीर के समस्त अंगों का सुचारू रूप से कार्य करने को ही शारीरिक स्वास्थ्य कहा गया है।

(ब)मानसिक आयाम (Mental Dimension)मानसिक स्वास्थ्य की नई परिभाषा के अनुसार ''व्यक्ति और उसके चारों तरफ फैले पर्यावरण एवं विष्व के बीच संतुलन, स्वयं और दूसरों के बीच सौहार्द एवं सद्भाव का होना, स्वयं की वास्तविकता तथा दूसरों एवं पर्यावरण के बीच सह अस्तित्व की भावना'' ही मानसिक स्वास्थ्य कहलाता है।

कई अनुसंधानों से यह सामने आया है कि मनोवैज्ञानिक कारण केवल मानसिक रोगों को ही नहीं अपितु कई दूसरी बिमारियों को भी जन्म देते हैं।

बहुत सी बिमारियाँ ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध मन से होता है। लेकिन उनका मूल कारण शारीरिक व जैविक क्रियाओं में असंतुलन के कारण होता है। पेप्टिक अल्सर उच्चरक्तचाप, अस्थमा आदि।

जब व्याधियाँ मन में होती हैं तो उन्हें ''आधी'' कहते हैं। जब उनका प्रभाव शरीर पर आता है तो व्याधी कहते हैं। इसी को ''आधी च व्याधी'' कहा गया है।

(स)सामाजिक आयाम(Social Dimension)मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है बिना समाज के मनुष्य की कल्पना करना भी निरर्थक है। सामाजिक स्वास्थ्य का मतलब व्यक्ति के खुद के अन्दर व समाज के सदस्यों के बीच, तथा पूरी मानव जाति व खुद के बीच आपसी ताल–मेल व अंखण्ड़ता की भावना ही सामाजिक स्वास्थ्य कहलाती है। दूसरे अर्थों में ''व्यक्ति की उसके व उसके समाज के अन्य सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्धों की सीमा एवं गुणवता को सामाजिक स्वास्थ्य कहा गया है।

(द)आध्यात्मिक आयाम(Spiritual Dimension)मनुष्य को मनुष्य इसीलिए कहा गया है कि वह चिन्तन व मनन करता है कि वह कौन है, कहाँ से आया है, उसे कहाँ जाना है, उसके जीवन का मूल उद्देष्य क्या है। वह जो कर रहा है वह सही है या गलत। यही सवाल आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अंग हैं एवं इनकी तलाष करना ही आध्यात्मिक स्वास्थ्य के प्रमुख आयाम हैं। इस प्रकार की जीवन शैली में शारीरिक मानसिक अखण्ड़ता, नैतिकता, जीवन मूल्यों का पालन करते हुए कुछ अतिविषेष कर गुजरने की इच्छा ही आध्यात्मिकता का मूल उद्देष्य है।

(य)भावनात्मक आयाम (Emotional Dimension)भावनात्मक आयाम का सीधा सम्बन्ध हमारी भावनाओं से है, भावनात्मक विकास में हमारा भावतंत्र सक्रिय होता है। हम जैसे क्रिया–कलाप करते हैं या जैसी हमारी भावना होती है वैसा ही हमारी ग्रन्थियाँ हर्मोनों का स्राव करती हैं। उनका हमारे भावनात्मक स्वास्थ्य पर सीधा असर पड़ता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत विज्ञानिकों ने

इसका गहरा विष्लेषण करने का प्रयत्न किया है। जब कोई घटना को मन स्तर पर लाकर किसी परिणाम की कल्पना कर लेते हैं या अपने मतानुसार उसका निष्कर्ष निकाल लेते हैं, चाहे व नकारात्मक हो या सकारात्मक, तब वह स्वास्थ्य को बुरी तरह से प्रभावित करता है इसके परिणामस्वरूप तनाव व उत्तेजना का रूप सामने आता है।

(र)व्यवसायिक आयाम (Vocational Dimension)प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए कोई न कोई कार्य अवष्य करना पड़ता है। उसके लिए वह कोई भी कार्यक्षेत्र अपनाता है तथा वह उसके जीवन का अविभाज्य अंग बन जाता है। वह उस व्यक्ति के स्वास्थ्य को विषेष रूप से प्रभावित करता है और उसीसे उसकी प्रतिष्ठा, मान–सम्मान, हीनता या श्रेष्ठता की उपलब्धि होती है। उसका आत्मसम्मान, आत्मविष्वास व स्वाभिमान उसी से जुड़ा हुआ है। इन सब बातों का प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है।

(ल)अन्य आयाम (Other Dimensions)उपरोक्त आयामों के अलावा कुछ अन्य आयाम भी हैं जो निम्न प्रकार हैं।

- दार्षनिक आयाम (Philosophical Dimension)
- पर्यावरणीय आयाम (environmental Dimension)
- सामाजिक आर्थिक आयाम (Socioeconomic Dimension)
- सांस्कृतिक आयाम Cultural Dimension
- शैक्षिक आयाम Educational Dimension
- नैदानिक आयाम Curative Dimension
- पौषक आयाम Mitritional Dimension

ऊपर लिखित आयाम किसी न किसी रूप में मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

6.3. मानसिक स्वास्थ्य–

6.3.1 मानसिक स्वास्थ्य –

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा – किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके भावनात्मक व्यवहार के संतुलित विकास का वह स्तर जो उसके अन्य सहजीवी एवं सहकर्मी व्यक्तियों के साथ सहअस्तित्व एवं सौहर्दपूर्ण व्यवहार को दर्षाता है, वह मानसिक स्वास्थ्य कहलाता है।

6.3.2. मानसिक स्वास्थ्य के सहयोगी घटक–

मानसिक स्वास्थ्य की नींव तो बचपन में ही पड़ जाती है। लेकिन बुद्धि एवं विकास के काल में अन्य घटक हैं जो इसके स्तर को प्रभावित करते हैं।

अ. **शारीरिक स्वास्थ्य**–शारीरिक स्वास्थ्य का सीधा असर मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। कहावत भी है अच्छे व स्वस्थ शरीर में ही अच्छे स्वास्थ्य का निवास होता है। जब मनुष्य शारीरिक रूप से बीमार होता है तो इसका असर मन पर पड़ता है मन दुःखी हो जाता है। इसीलिये माना जाता है कि अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य, अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का अति आवष्यक तत्व है।

ब. **मूलभूत आवश्यकताएँ** –मानसिक स्वास्थ्य के लिए शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवष्यकताएँ अति आवष्यक हैं। इन मूलभूत आवष्यकताओं की पूर्ति के बिना मानसिक स्वास्थ्य की बात करना निरर्थक है।

स. **शारीरिक आवश्यकताएँ** –रोटी, कपड़ा, मकान, मनोरंजन, नींद आदि शारीरिक आवष्यकताओं की श्रेणी में आता है।

द. **मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ** –स्नेह प्यार–दुलार, स्वतंन्त्रता, यष, प्रषंसा, उपलब्धि आदि मनोवैज्ञानिक आवष्यकताएँ हैं। इनकी पूर्ति करना भी अति आवष्यक है।

य. **आदतें**–आदमी कर्मषील प्राणी है। उसे कोई न कोई कार्य करना ही पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ न कुछ अच्छी व बुरी आदतें होती हैं।

जैसे– समय पर खाना, विश्राम करना, नियमित खेलना या योगाभ्यास करना, अध्ययन काम करने की धुन, सात्विक भोजन ये मनुष्य की अच्छी आदतें है। यह सब मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में उपयोगी हैं।

6.3.3. मानसिक स्वास्थ्य के सूत्र

आचार्य महाप्रज्ञ सन् (2002), ''जीवन विज्ञान की रूपरेखा'' के अनुसार आयुर्वेद में रोग चार प्रकार के माने गये हैं।

अ. आगन्तुक ब. शारीरिक स. मानसिक द. स्वाभाविक

अ. आगन्तुक रोगों के हेतु बाह्य उपकरण शस्त्र हैं।

ब. शारीरिक रोग, अल्प, मिथ्या और अतिमात्रा में प्रयुक्त अन्न– पान के कारण कुपित या विषम हुए वात, पित, कफ या इन के मिश्रण से उत्पन्न होते हैं।

स. मानसिक रोग, क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया, दैन्य, मत्सर्य, काम, लोभ आदि से तथा इच्छा और द्वेष के अनेक भेदों से उत्पन्न होते हैं।

द. स्वाभाविक रोग, भूख, प्यास, बुढ़ापा, मृत्यु निद्रा आदि हैं।

रोग का कारण कर्म भी माना जाता है। कर्म रोग किसी बाह्य हेतु के बिना भी प्रकट हो जाते हैं। कर्मज रोग हमारे लिए परोक्ष हैं। स्वाभाविक रोग जीवन का सहज क्रम है। आगन्तुक रोग आकस्मिक घटना है।

शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक इन तीनों प्रकार के रोगों में मुख्य रोग मानसिक है अर्थात् रोग के मुख्य हेतु आंतरिक दोष, क्रोध आदि हैं।

मन, वषवर्ती होता है तो पित, वात और कफ की अतिरिक्त विषमता नहीं होती। मन पवित्र होता है तो क्रोध आदि जनित रोग उत्पन्न नहीं होते स्वास्थ्य यानी स्वस्थिति। यदि जीवन में समता और संतुलन है, तो मन भी स्वस्थ रहेगा और शरीर भी स्वस्थ रहेगा।

मानसिक स्वास्थ्य के सूत्र

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पहला सूत्र है– अपने आप को जानना। जो व्यक्ति अपनी क्षमता व योग्यता को नहीं जानता जो अक्षमता को नहीं जानता, वह मन से स्वस्थ कैसे रह सकता है। मनुष्य में अपने आप को जानने की क्षमता व योग्यता है।

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का दूसरा सूत्र है– परिणामों की स्वीकृति। हम प्रवृत्ति करते हैं किन्तु उसके परिणामों को स्वीकार नहीं करते इसलिए मन में अंसतोष व अषांति पैदा होती है। कृत के परिणामों से जहाँ अपने–आप बचाने की मनोवृत्ति होती हैं, वहाँ मानसिक स्वास्थ्य खतरे में पड़ जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का तीसरा सूत्र है– सत्य के प्रति समर्पण। सत्य की व्याख्या बहुत ही जटिल है सत्य का अर्थ है – सार्वभौम नियम (Universal Truth) मृत्यु एक सार्वभौम नियम है। यह एक बड़ी सच्चाई है। इसे कोई भी नहीं टाल सकता कर्म एक सच्चाई है, काल एक सच्चाई है, वस्तु स्वभाव एक सच्चाई है, सार्वभौम सच्चाईयों के प्रति, जो समर्पित रहता है। वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का चौथा सूत्र है– सहिष्णुता का विकास। सहिष्णुता को विकसित किये बिना कोई भी संतुलित जीवन नहीं जी सकता। जिसने सहिष्णुता को साथ लिया, उसके लिए सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, सुविधा–असुविधा कोई अर्थवान नहीं होते। ऐसा व्यक्ति अपने मन और शरीर का ऐसा निर्माण कर लेता है, जिससे वह हर स्थिति को झेलने में समर्थ व सक्षम हो जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पांचवां सूत्र है– अपने आपको यथार्थरूप में प्रस्तुत करना। व्यक्ति अपने आपको यथार्थ रूप में प्रस्तुत करना नहीं चाहता। वह अपने आपको उस रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़े। किन्तु जब यथार्थ सामने आता है, तब बहुत कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। सामाजिक संदर्भ में अपने आप को अयथार्थ रूप में प्रस्तुत करना, अपने आपको धोखा देना है। इससे अनेक कठिनाइयाँ और समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का छठा सूत्र है– चैतन्य केन्द्रों की सक्रियता। जब शरीर के सारे चैतन्य केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं, तब हमारी शक्ति का स्रोत फूटता है। इसके बिना मन शक्तिषाली नहीं बनता। मन पर निरन्तर आघात और प्रतिघात होते रहते हैं। सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक वातावरण में ऐसी घटनाऐं घटित होती रहती हैं, जिससे मन आहत होता है। इतने आघात प्रतिघात के बीच रहता हुआ मन स्वस्थ कैसे रह सकता है ? मन पर होने वाले आघातों से बचने के लिए सषक्त उपाय है– हम अपने चैतन्य केन्द्रों को सक्रिय करें?

मानसिक स्वास्थ्य मापन–

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व को अंकित करने और मानसिक स्वास्थ्य को जाँचने के छह सूत्र हैं। छह पैरामीटर दिये हैं।

वेशभूषा– व्यक्ति कैसे कपड़े पहनता है? वह अपने प्रति कितना सजग है? वह कपड़ों को कितनी चतुराई से धारण करता है? पहनने की विधि से मन की प्रसन्नता मापी जा सकती है।

व्यवहार व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है? कभी संतुलित व्यवहार और कभी असंतुलित व्यवहार करने वाले का मन स्वस्थ नहीं होता। जो व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है, तो उसके प्रति सामने वाला कितना ही दुर्व्यवहार क्यों न करे, वह अपना संतुलन नहीं खोयेगा। वह अच्छा व्यवहार ही करेगा। वह अपने अच्छे व्यवहार के द्वारा सामने वाले व्यक्ति के व्यवहार को बदलेगा या उसे यह सोचने के लिए बाध्य करेगा कि वह व्यक्ति सचमुच ही विनम्र और सद्व्यवहार करने वाला है।

विचार– विचार के द्वारा व्यक्ति को परखा जा सकता है। विचारों के द्वारा ही मानसिक स्वास्थ्य को जाना जा सकता है। जब मन स्वस्थ होता है, तो व्यक्ति की उपज भी स्वस्थ होती है। वह सही बात को सही ढंग से सोचता है।

प्रतिक्रिया– विभिन्न परिस्थितियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं के द्वारा समझा जा सकता है कि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य कैसा है ? कोई

व्यक्ति अगर कटु वाणी कहता है, तो उसका उत्तर कटु बात से ही दिया जाये, यह जरूरी नहीं है। किन्तु जब ये प्रतिक्रियाऐं प्रकट होती हैं, तब यह जान लिया जाता है कि व्यक्ति मन से कितना रूग्ण है।

स्वभाव आदमी आलसी है या कर्मठ? आषावादी है निषावादी? कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो आषा में भी निराषा खोज लेते हैं। कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो निराषा मैं भी आषा ढूंढ निकालते हैं। आषावादी व्यक्ति नीरस वातावरण में भी उत्साह भर देता है।

निर्णय की शक्ति व्यक्ति ठीक निर्णय लेता है या नहीं लेता? व्यक्ति तत्काल निर्णय लेता है या नहीं लेता? निर्णय क्षमता के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य का पता लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष

जो व्यक्ति संतुलित जीवन जीता है, समता का जीवन जीता है, मन को आवेगों और दुष्चिंताओं की भट्‌टी में नहीं झोंकता, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है।

6.4. चित्त और मन (Psyche and Mind)

वैद्य भगवानदास गुप्ता, कु. कथनगुप्ता– ''आयुर्वेद सैद्धान्तिक अध्ययन'' के अनुसार आयुर्वेद एवं योगषास्त्र में मन के अस्तित्व पर विषेष महत्व दिया गया है। इससे सम्बन्धित सिंद्धान्त महत्वपूर्ण एवं सार्थक सिद्धान्त हैं। आयुर्वेद में रोगों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जाता है।

(अ) शारीरिक

(ब)मानसिक

लेकिन दोनों ही रोगों में मन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

6.4.1. मन का स्वरूप –

योगषास्त्र में भी मन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। योग का प्रमुख उददे्ष्य है मन की विभिन्न प्रकार की वृत्तियों को रोकना व नियन्त्रण करना योग के अनेक सम्प्रदाय, अनुयायी एवं प्रकार हैं। लेकिन सभी मन की प्रवृत्तियों के नियन्त्रण पर

बल देते हैं। क्योंकि मन की वृत्तियों को वष में करके ही मनुष्य शाष्वत सत्य अथवा मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बन सकता है।

6.4.2. मन का स्थान–

ऐसा माना जाता है कि मन का निवास ह्रद्य और मस्तिष्क में है। इन दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है तथा इनके कार्य भी एक दूसरे पर आधारित हैं। आयुर्वेद में इस बात पर बल दिया गया है मन ह्रद्य में रहता है। परन्तु योग के ग्रन्थों में ह्रद्य व मस्तिष्क दोनों को ही मन का निवास स्थान माना गया है।

6.4.3. मन का कार्यः–

मन का सर्वप्रमुख कार्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा एकत्र किये गये उत्तेजकों का ज्ञान प्राप्त करना तथा इस ज्ञान को अंहकार, बुद्धि आदि तक पहुँचाना है। इस ज्ञान प्राप्ति की प्रतिक्रिया के रूप में मन यह ज्ञान कमेन्द्रियों तक पहुँचाता है। इसके परिणाम स्वरूप, कर्मेन्द्रियां परावर्तन (Reflexion)करती हैं। प्रतिवर्त क्रिया Reflexactionमनुष्य को सोचने विचारने कल्पना करने, सतर्क रहने तथा निर्णय करने में सहायता करती है।

6.4.4. मन के विभिन्न गुण व स्तर–

मन में तीन गुण विद्यमान हैं। सत्व, रजस् तथा तमस् आदि। ये तीनों ही गुण भिन्न–भिन्न अनुपात में सभी में पाये जाते हैं।

- सत्व गुण प्रकाष अथवा (ज्ञान) का प्रतीक है।
- रजस् कार्य में प्रवृत्ति (क्रियाषीलता) का प्रतीक है।
- तम से गुण ज्ञान एवं प्रवृति के निरोध (जड़ता) का प्रतीक है।

इन्हीं के आधार पर अलग–अलग मनुष्यों की अलग–अलग मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

मन के गुणों के आधार पर मानसिक अवस्थाओं को निम्नलिखित पाँच स्तरों में बांटा गया है।

- **क्षिप्तः** इस स्तर पर आकर मन इन्द्रियों के रूप, रस, ग्रन्थ तथा स्पर्ष विषयों की ओर बहुत आकर्षित रहता है।

- **मूढ़ः** इस स्तर में मन की प्रवृति अज्ञान, दुष्कर्मो, बहुत अधिक निद्रा आदि जड़ कर्मो में रहती है।

- **विक्षिप्तः** यह अवस्था उन्मत की सी होती है। इसमें मन ज्ञान प्राप्ति, गुण, ग्रहण अथवा उद्‌देष्य प्राप्ति के पिछे उन्मत्त सा रहता है।

- **एकाग्रः** इस अवस्था में मन दुर्गुणों को दूर करने में लिप्त रहता है तथा बहुत समय तक विषय में एकाग्रचित रह सकता है।

- **निरूद्ध** : इस अवस्था में सभी मानसिक क्रियाएँ अथवा संकल्प समाप्त हो जाते हैं। मन अपने मूल तथा विषुद्ध रूप में शान्त तथा साम्यावस्था में स्थित रहता है।

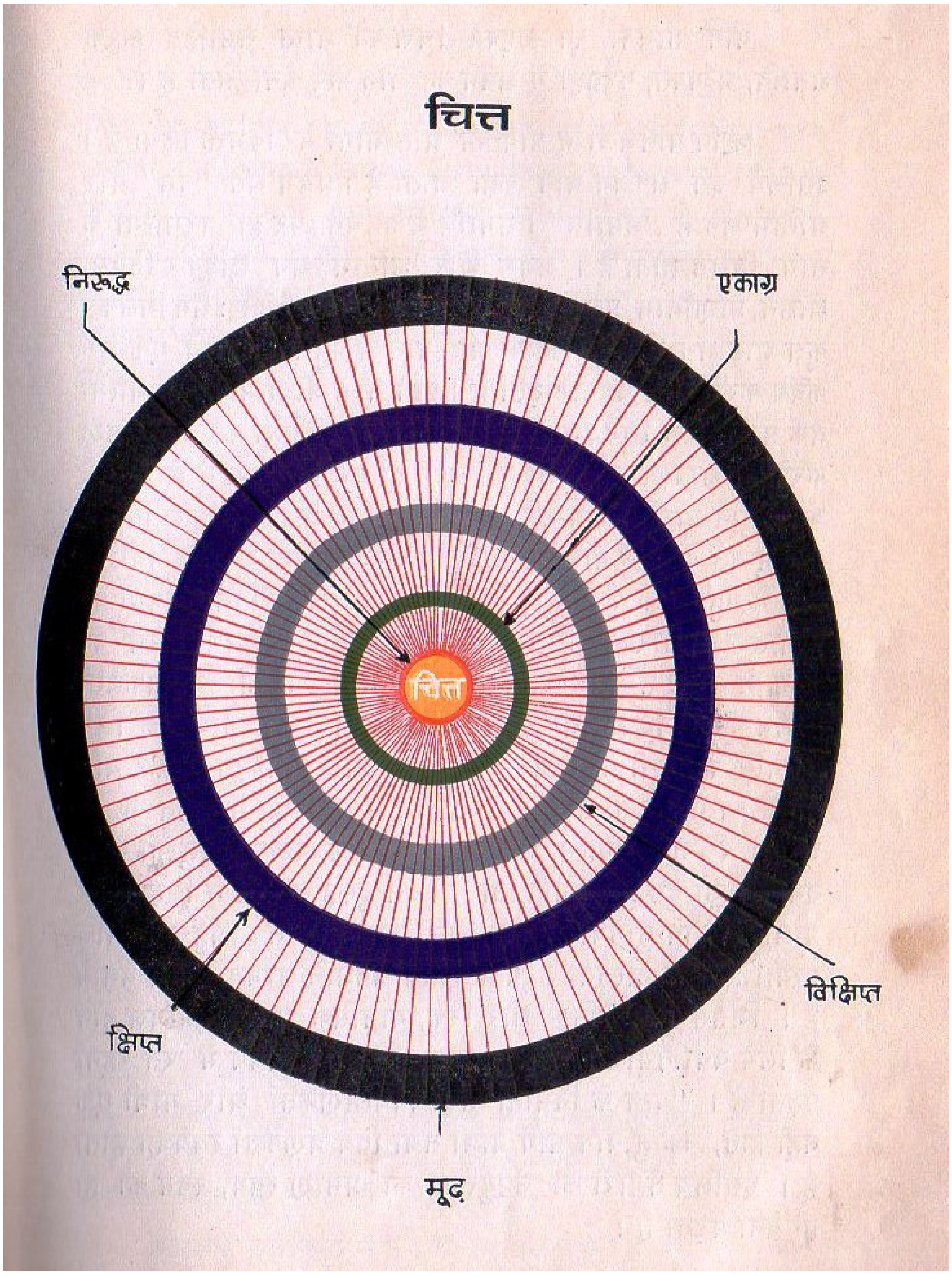

चित्र –11

6.4.5. चित्त–

मानसिक क्रियाऐं चित्त के सहयोग से ही सम्पन्न होती है। उसके सहयोग के बिना मन कुछ भी नहीं कर सकता सारी शारीरिक व मानसिक क्रियाएं मस्तिष्क द्वारा चित्त का सहयोग प्राप्त होने पर ही सम्पादित होती हैं। क्रिया करना शरीर का काम है, संचालन करना चित्त का काम है।

मन भिन्न है, चित्त भिन्न है। चित्त चेतनावान या सचेतन है, मन चैतन्य रहित है, जड़ या पौद्गालिक है। मन व्यक्ति का ऊपरी हिस्सा है, जो चित्त का स्पर्ष पाकर सचेतन जैसा प्रतीत होता है, चित्त हमारी भीतर की सारी चेतना का स्थूल व्यक्तित्व पर प्रतिनित्व करता है।

चित्त स्थिर हो सकता है। मन स्थिर नहीं हो सकता। मन का स्वभाव चंचल है। उसका अस्तित्व चंचलता में ही है। हम चित्त को स्थिर कर सकते हैं। जब चित्त स्थिर होता है, तब मन अमन बन जाता है। मन होता ही नहीं है। चित्त मालिक है और मन नौकर है। मालिक जब चाहता है तभी नौकर काम करता है।

6.4.6. चित्त का कार्य–

चित्त का कार्य है अनुभव करना, मात्र जानना, देखना मन का कार्य है मनन करना, स्मृति चिन्तन, कल्पना। दूसरे शब्दों में अनुभूति करना चेतना का विषिष्ट लक्षण है। यह चित्त का कार्य है।

योग वेदान्त दर्षन में मन और शरीर को भी आत्मा के चारों तरफ एक प्रकार का कोष या आवरण कहा जाता है। इस प्रकार से ये पाँच कोष या आवरण होते हैं।

अन्नमय कोष–मनुष्य जो कुछ बाहर से दिखाई देता है। अर्थात् उसका भौतिक आकार प्रकार, यह मनुष्य आत्मा का ब्राह्मतम रूप है।

प्राणमय कोष–यह कोष जीवन कोष कहलाता है और इसमें वनस्पति, जगत के तमाम पौधों, वृक्षों और जीवों में जो सैल या जीवाणुओं की गति है, उसी को प्राणमय कोष कहते हैं।

मनोमय कोष—अथवा संवित और चेतना, जो कि जीवित पषुओं में देखने को मिलती है या प्रकट होती है उसे मनोमय कोष कहते हैं।

विज्ञान मय कोष—जो केवल मनुष्य में ही उपलब्ध है और क्रियाषील है।

आनन्दमय कोष—जो आत्मा के चारों और गहरी निद्रा में अनुभव किया जा सकता है।

6.4.7. मानव जीवात्मा के तीन शरीर

मानव आत्मा के तीन स्वरूप हैं जिन्हें स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर कहते हैं।

स्थूल शरीर	अन्नमय कोष	शरीर की जो रचना हमें दिखाई देती है। पंच तत्व हवा, आकाष, जल पृथ्वी, अग्नि।
सूक्ष्मषरीर	मनोमय विज्ञानमय प्राणमय कोष	स्थूल शरीर नष्ट होने के बाद भी सुक्ष्म शरीर नष्ट नहीं होता। 19 तत्वों का बना है पाँच क्रमेन्द्रियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार, अन्तःकरण। मोक्ष प्राप्ति पर ब्रह में लीन होने पर ही इसका अन्त होता है।
कारण शरीर	आनन्दमय कोष	कारण शरीर को बीज शरीर भी कहते है। क्योंकि सूक्ष्म व स्थूल दोनों का कारण यही है।

6.4.8. प्राण –

मुख्यरूप से मानव शरीर में प्राण के 10 स्थान होते हैं, जो निम्न प्रकार से हैं:–

क.स.	**प्राण वायु**	**स्थान**
1	प्राण	ह्रद्य में
2	अपान	गुदा में
3	समान	नाभि
4	व्यान	सम्पूर्ण शरीर में
5	उदान	कण्ठ में
	उप प्राण (वायु)	कार्य
6	नाग	उगलने में, डकार लेने वाली वायु
7	धनंजय	मरने के बाद, शरीर को फुलाने वाली वायु
8	देवदत	जँमाई लेने में
9	कूर्म	पलकों को खोलने व बन्द करने में
10	कृकल	भूख में व छींकने में

ह्रदि प्राणो गुदेअ्पानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशस्थों व्यानः सर्वशरीरग।।

(षिव संहिता, 3.7)

प्राण का निवास ह्रद्य में, अपान का गुदा में, समान नाभी के ऊपरी क्षेत्र में है, उदान कण्ड व व्यान सारे शरीर में गतिषील रहता है।

6.4.9. नाड़ियाँ

हमारे शरीर में कुल 72,800 नाड़ियाँ हैं, जिनमें मुख्य 10 हैं। इनमें प्रथम तीन प्रमुख हैं। नाड़ियों के नाम व स्थान निम्न प्रकार हैः—

1	इड़ा (चन्द्रनाड़ी गंगा आदि)	बायीं नासिका में
2	पिंगला (सूर्यनाड़ी, यमुना आदि)	दायीं नासिका में
3	सुषुम्ना (सरस्वती नाड़)	दोनों नासिका के मध्य
4	गान्धारी	बायीं आँख में
5	हस्तजिव्हा	दायीं आँख में
6	पूषा	दायें कान में
7	यषा या यषस्विनी	बायें कान में
8	अलम्बुष	मुख
9	कुहू	लिंग
10	शंखिनी	गुदा

6.4.10. चक्र

कल्पना द्वारा कल्पित कुछ मुख्य आकृतियाँ जो मेरूदण्ड (Spinal Column)में स्थित है। षट्चक्रों के नाम व स्थिति निम्न प्रकार हैः—

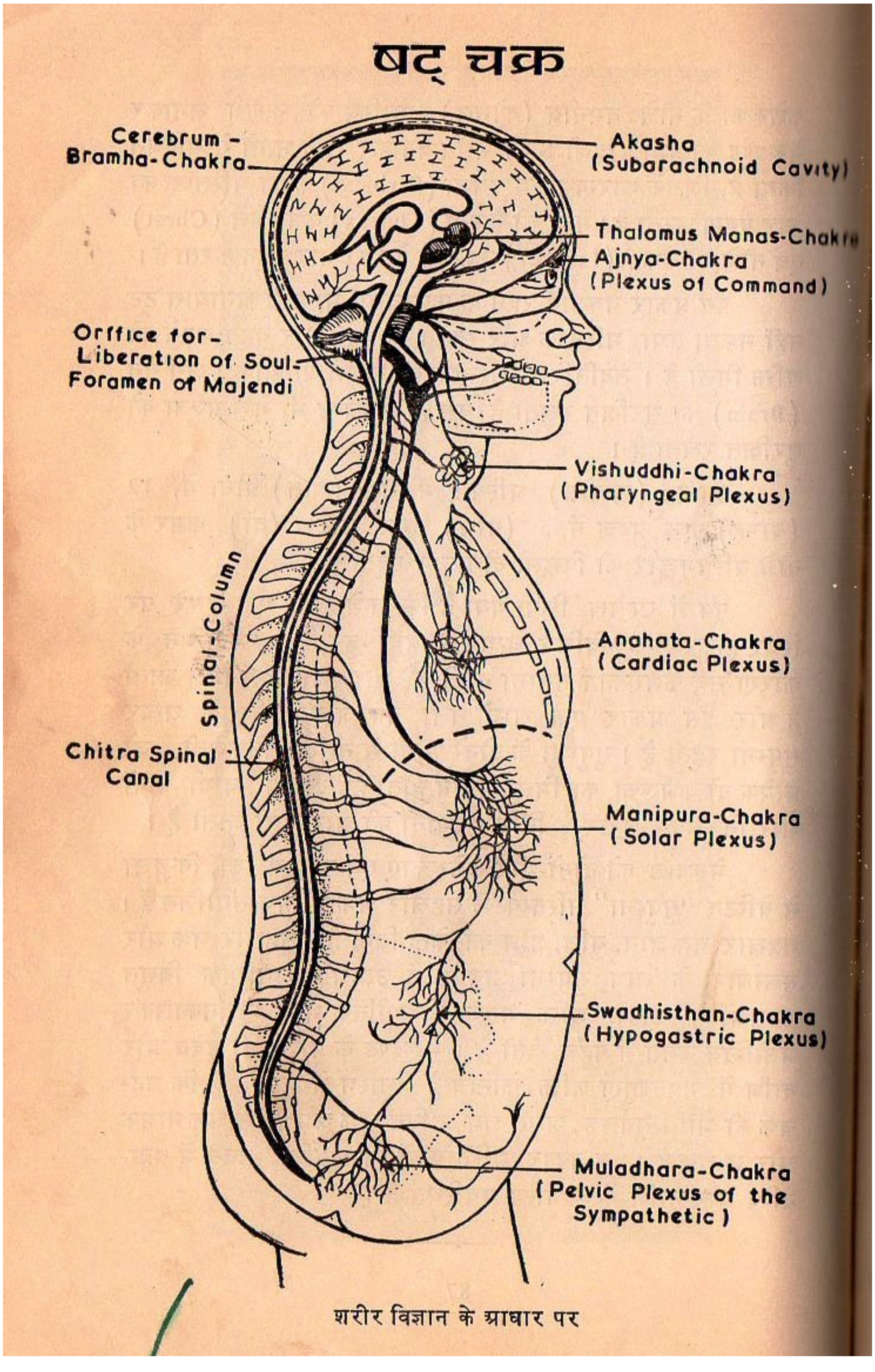
षट् चक्र
Cerebrum - Bramha-Chakra
Akasha (Subarachnoid Cavity)
Thalomus Manas-Chakra
Ajnya-Chakra (Plexus of Command)
Orifice for-Liberation of Soul-Foramen of Majendi
Vishuddhi-Chakra (Pharyngeal Plexus)
Spinal-Column
Anahata-Chakra (Cardiac Plexus)
Chitra Spinal Canal
Manipura-Chakra (Solar Plexus)
Swadhisthan-Chakra (Hypogastric Plexus)
Muladhara-Chakra (Pelvic Plexus of the Sympathetic)
शरीर विज्ञान के आधार पर

चित्र 12

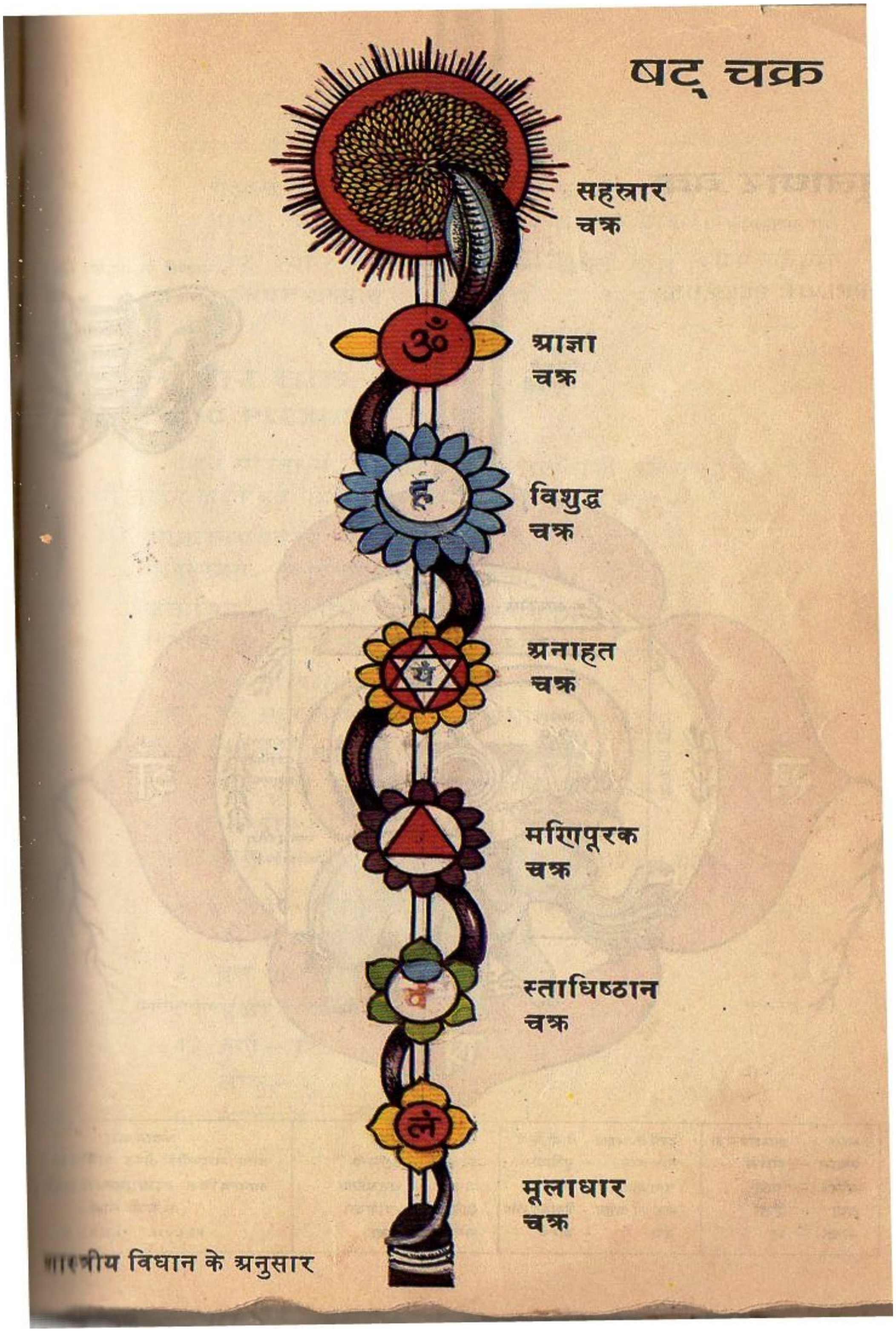

षट् चक्र
सहस्त्रार चक्र
आज्ञा चक्र
विशुद्ध चक्र
अनाहत चक्र
मणिपूरक चक्र
स्वाधिष्ठान चक्र
मूलाधार चक्र
शास्त्रीय विधान के अनुसार

चित्र 13

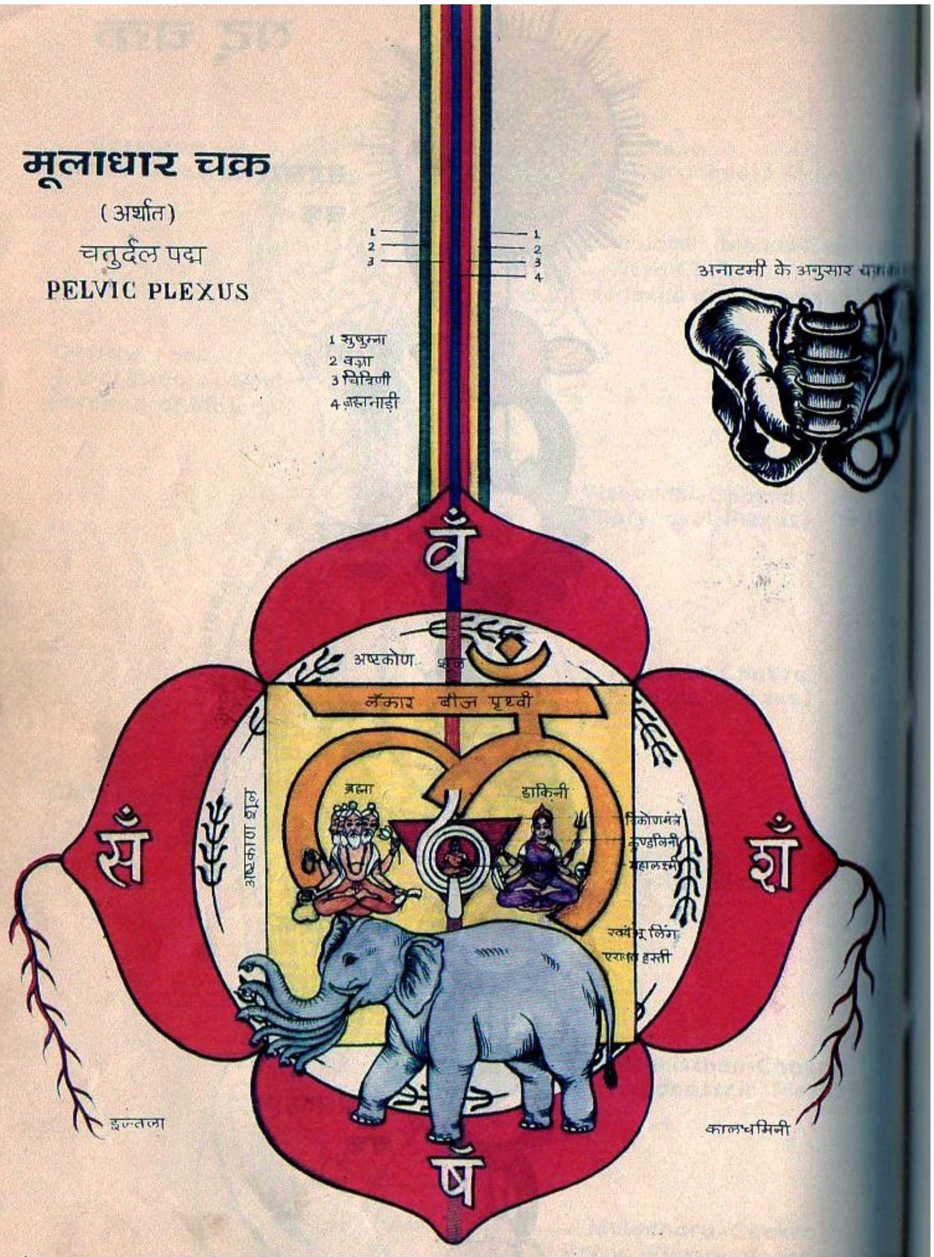

नाम आधार चक्र	दलों के अक्षर - वँ, शँ, षँ, सँ	देव - ब्रह्मा	ध्यान फल
स्थान - योनि	नाम तत्व - पृथ्वी	देवशक्ति - डाकिनी	वक्ता, मनुष्यों में श्रेष्ठ सर्ववि
दल - चतुः	तत्व बीज लँ	यंत्र - चतुष्कोण	आनन्द चित्त काव्यप्रबन्ध में शा
वर्ण - रक्त	बीज का वाहन - ऐरावत हस्ति	ज्ञानेन्द्रिय - नासिका	अंग्रेजी नाम
लोक - भू	गुण गन्ध	कर्मेन्द्रिय - गुदा	PELVIC PLEXUS

चित्र 14

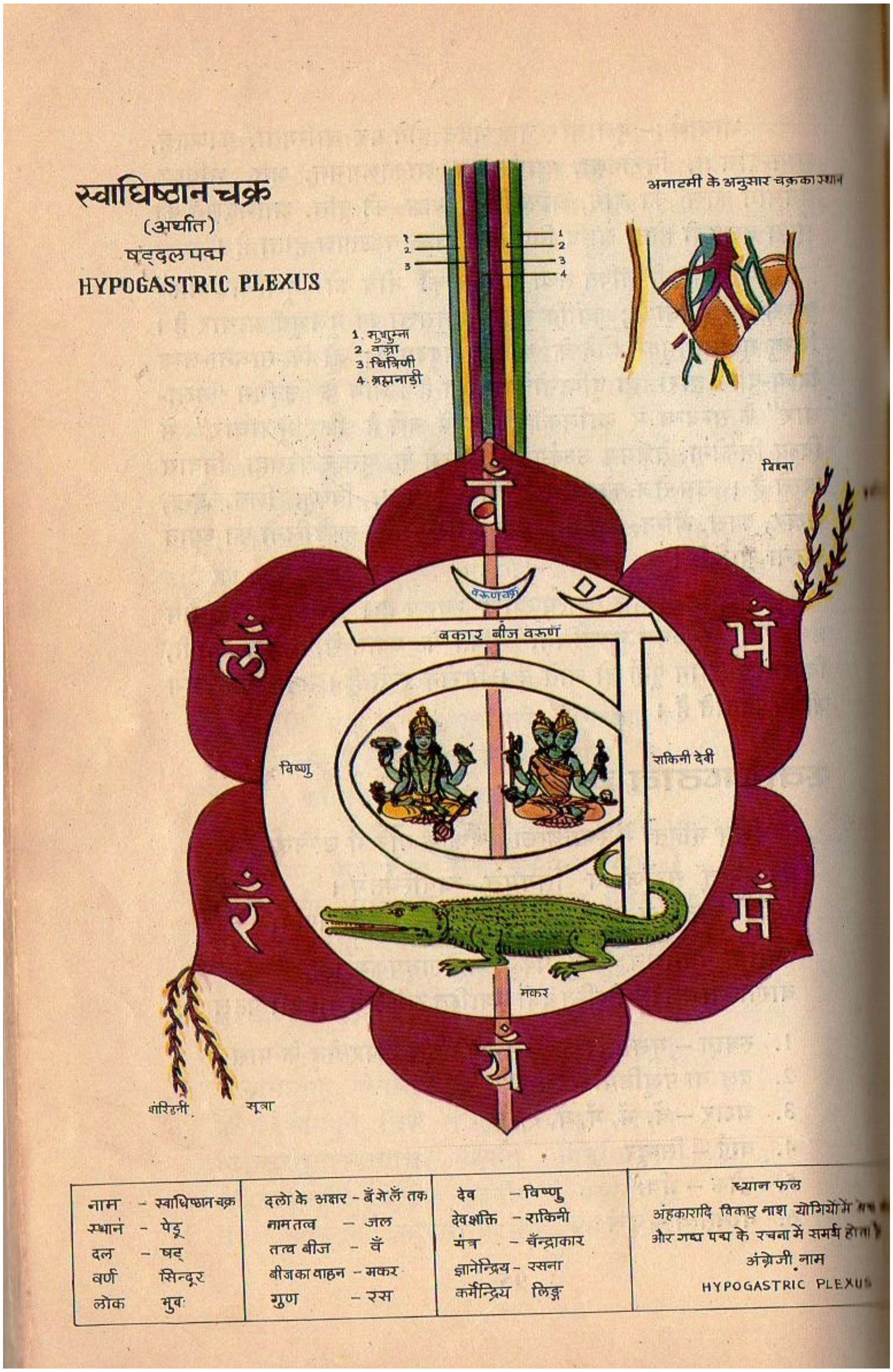
स्वाधिष्ठान चक्र
(अर्थात)
षट्दल पद्म
HYPOGASTRIC PLEXUS
अनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान
1 सुषुम्ना
2 वज्रा
3 चित्रिणी
4 ब्रह्मनाडी
बँ
भँ
मँ
यँ
रँ
लँ
वरुणचक्र
बकार बीज वरूण
विष्णु
राकिनी देवी
मकर
सूत्रा
नाम - स्वाधिष्ठान चक्र
स्थान - पेडू
दल - षट्
वर्ण सिन्दूर
लोक भुवः
दलों के अक्षर - बँ से लँ तक
नामतत्व - जल
तत्व बीज - वँ
बीज का वाहन - मकर
गुण - रस
देव - विष्णु
देवशक्ति - राकिनी
यंत्र - चँन्द्राकार
ज्ञानेन्द्रिय - रसना
कर्मेन्द्रिय लिङ्ग
ध्यान फल
अंहकारादि विकार नाश योगियों में
और गद्य पद्य के रचना में समर्थ होता है
अंग्रेजी नाम
HYPOGASTRIC PLEXUS

चित्र 15

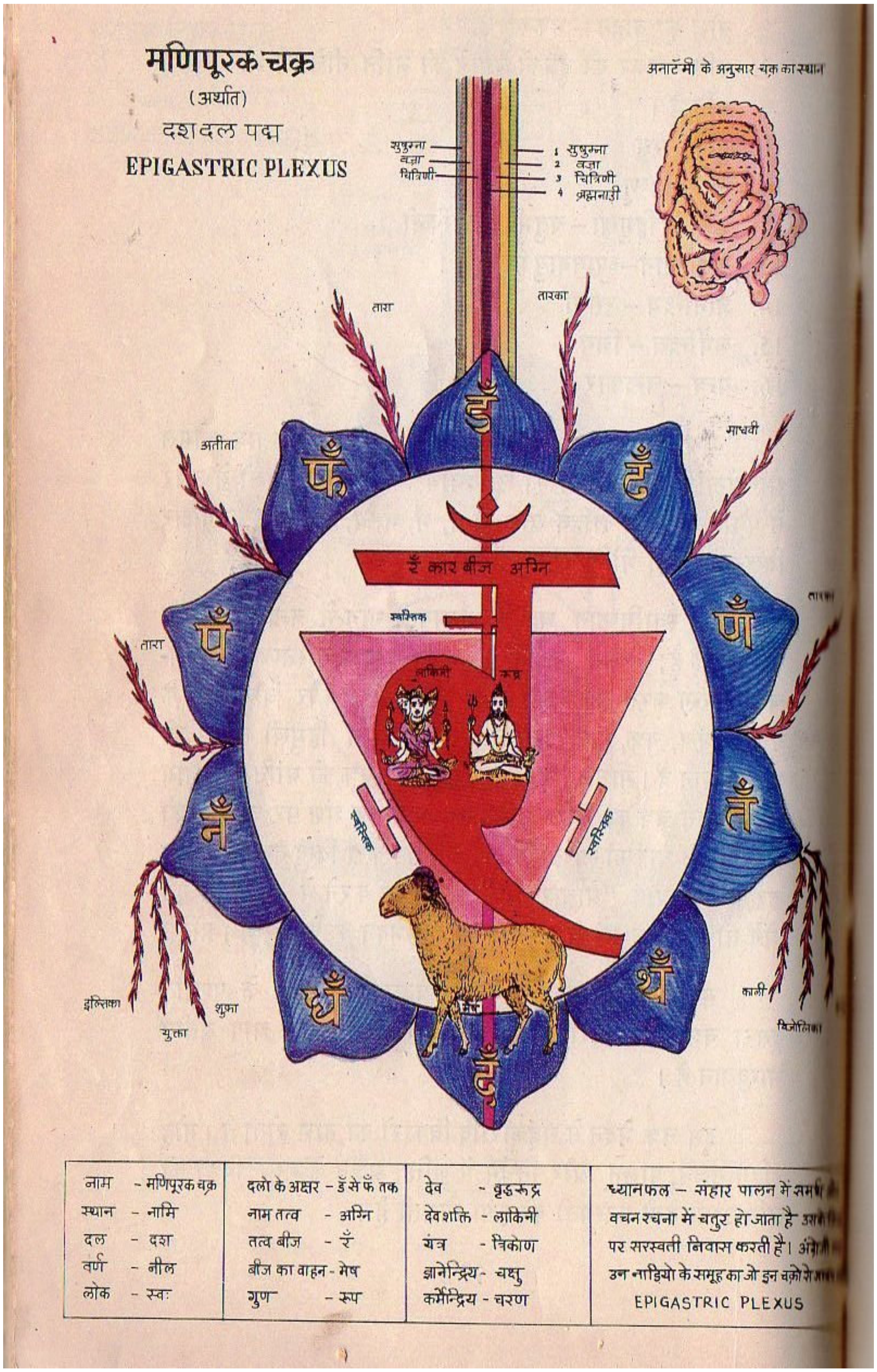

मणिपूरक चक्र
(अर्थात)
दशदल पद्म
EPIGASTRIC PLEXUS
अनाटॅमी के अनुसार चक्र का स्थान
1 सुषुम्ना
2 वज्रा
3 चित्रिणी
4 ब्रह्मनाड़ी
तारा
तारका
अतीता
माधवी
इँ
फँ
टँ
पँ
णँ
नँ
तँ
धँ
थँ
दँ
रँ कार बीज अग्नि
स्वस्तिक
लाकिनी
रुद्र
इल्लिका
युक्ता
शुका
काली
विजेलिका
नाम - मणिपूरक चक्र
स्थान - नाभि
दल - दश
वर्ण - नील
लोक - स्वः
दलो के अक्षर - डँ से फँ तक
नाम तत्व - अग्नि
तत्व बीज - रँ
बीज का वाहन - मेष
गुण - रूप
देव - वृद्धरूद्र
देवशक्ति - लाकिनी
यंत्र - त्रिकोण
ज्ञानेन्द्रिय - चक्षु
कर्मेन्द्रिय - चरण
ध्यानफल – संहार पालन में समर्थ
वचनरचना में चतुर हो जाता है
पर सरस्वती निवास करती है।
EPIGASTRIC PLEXUS

चित्र 16

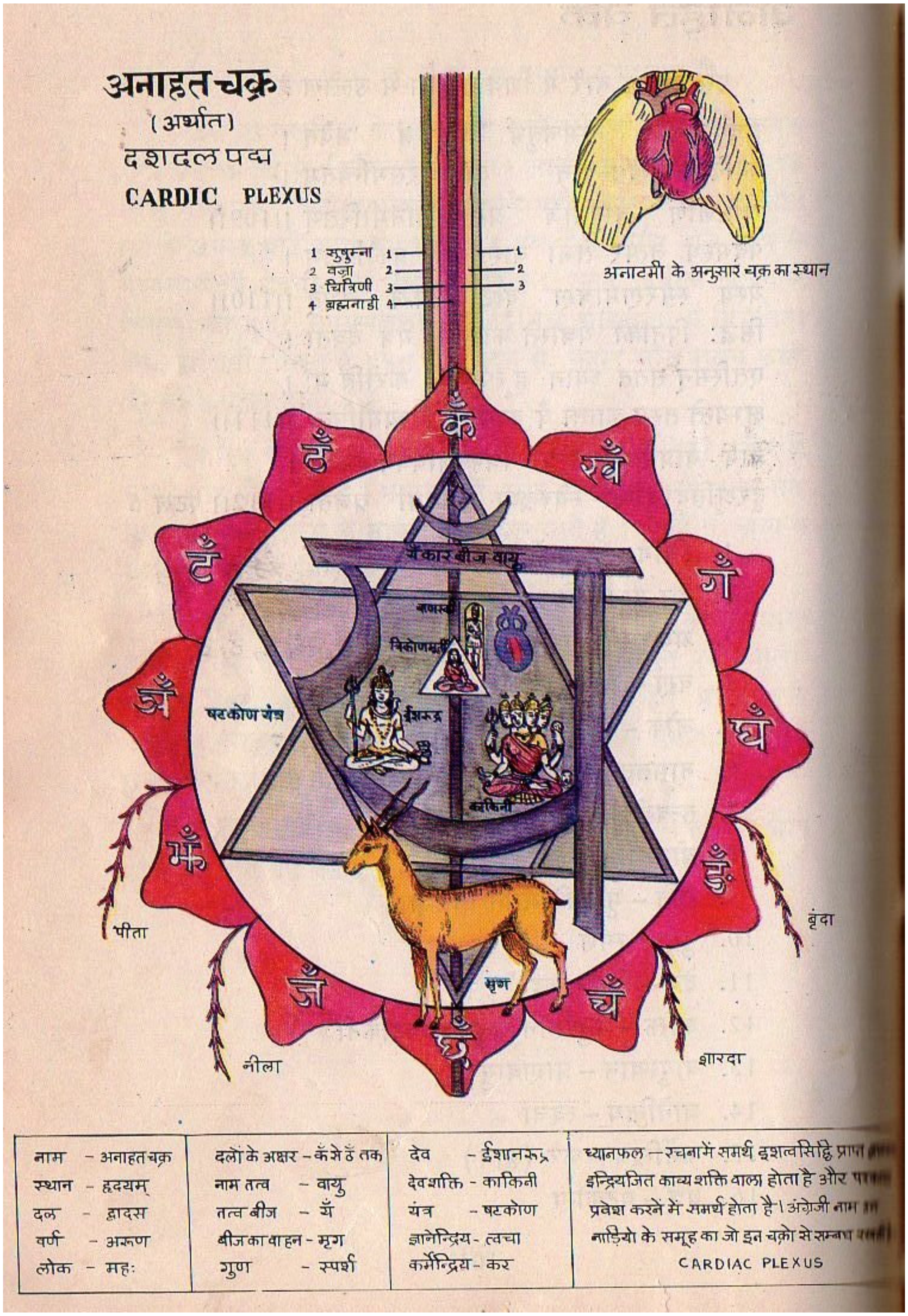
अनाहत चक्र
(अर्थात)
दशदल पद्म
CARDIC PLEXUS
1 सुषुम्ना
2 वज्रा
3 चित्रिणी
4 ब्रह्मनाडी
अनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान
यँकार बीज वायु
षटकोण यंत्र
ईशरुद्र
काकिनी
मृग
पीता
नीला
शारदा
वृंदा
नाम - अनाहत चक्र
स्थान - हृदयम्
दल - द्वादस
वर्ण - अरूण
लोक - महः
दलों के अक्षर - कँ से ठँ तक
नाम तत्व - वायु
तत्व बीज - यँ
बीज का वाहन - मृग
गुण - स्पर्श
देव - ईशानरूद्र
देवशक्ति - काकिनी
यंत्र - षटकोण
ज्ञानेन्द्रिय - त्वचा
कर्मेन्द्रिय - कर
ध्यानफल — रचना में समर्थ ईशत्वसिद्धि प्राप्त
इन्द्रियजित काव्य शक्ति वाला होता है और
प्रवेश करने में समर्थ होता है। अंग्रेजी नाम
नाड़ियो के समूह का जो इन चक्रो से सम्बन्ध
CARDIAC PLEXUS

चित्र 17

विशुद्धाख्य चक्र
(अर्थात)
षोडश दल पद्म
CAROTID PLEXUS
1. सुषुम्ना
2. वज्रा
3. चित्रिणी
4. ब्रह्मनाडी
अनाटमी के अनुसार चक्र का स्थान
कुमारिका
सीता
शिवा
एकामारिका
मातिका
अः
अ
आ
अं
इ
ई
औ
ओ
उ
ऊ
ऐ
ए
ऋ
ॡ
ऌ
ॠ
हँकार बीज
आकाश
पूर्ण चन्द्र
सदाशिव
शाकिनी
हस्ती
श्रीरवती
अमृता
सरस्वती
नाम - विशुद्धाख्य चक्र
स्थान - कण्ठ
दल - षोडश
वर्ण - धूम्र
लोक - जनः
दलों के अक्षर - अँ से अः तक
नाम तत्व - आकाश
तत्व बीज - हँ
बीज का वाहन - हस्ती
गुण - शब्द
देव - पंच वक्त्र
देव शक्ति - शाकिनी
यंत्र - शून्य चक्र (गोलाकार)
ज्ञानेन्द्रिय - कर्ण
कर्मेन्द्रिय - वाक्
ध्यानफल — काव्य रचना में समर्थ ज्ञानवान उत्तम वक्ता
चिंत त्रिलोकदर्शी सर्वहितकारी आरोग्य चिरंजीवी और
तेजस्वी होता है। अंग्रेजी नाम उन नाड़ियों के समूह
ओ इन चक्रों से सम्बन्ध रखती हैं।
CAROTID PLEXUS

चित्र 18

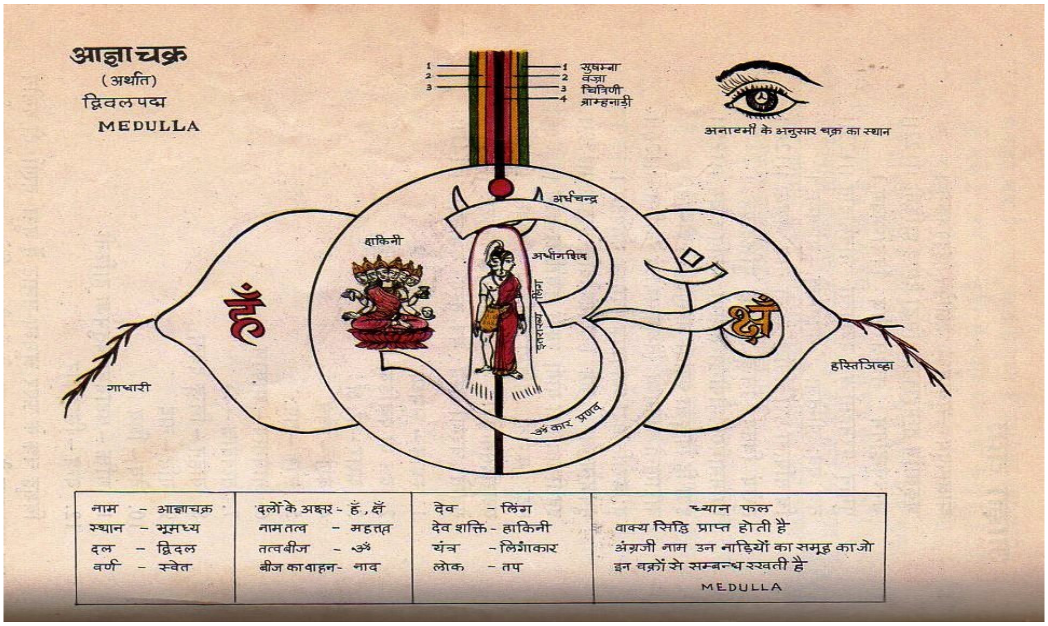
आज्ञा चक्र
(अर्थात)
द्विवलपद्म
MEDULLA
1 सुषम्ना
2 वज्रा
3 चित्रिणी
4 ब्राम्हनाड़ी
अनात्मों के अनुसार चक्र का स्थान
अर्धचन्द्र
हाकिनी
अर्धांगशिव
हं
क्षं
गान्धारी
हस्तिजिव्हा
ॐ कार प्रणव
नाम - आज्ञाचक्र
स्थान - भ्रूमध्य
दल - द्विदल
वर्ण - स्वेत
दलों के अक्षर - हं, क्षं
नाम तत्व - महत्तत्व
तत्वबीज - ॐ
बीज का वाहन - नाद
देव - लिंग
देव शक्ति - हाकिनी
यंत्र - लिंगाकार
लोक - तप
ध्यान फल
वाक्य सिद्धि प्राप्त होती है
अंग्रजी नाम उन नाड़ियों का समूह का जो
इन चक्रों से सम्बन्ध रखती है
MEDULLA

चित्र 19

शून्यचक्र

सहस्त्रदल पद्म

BRAIN

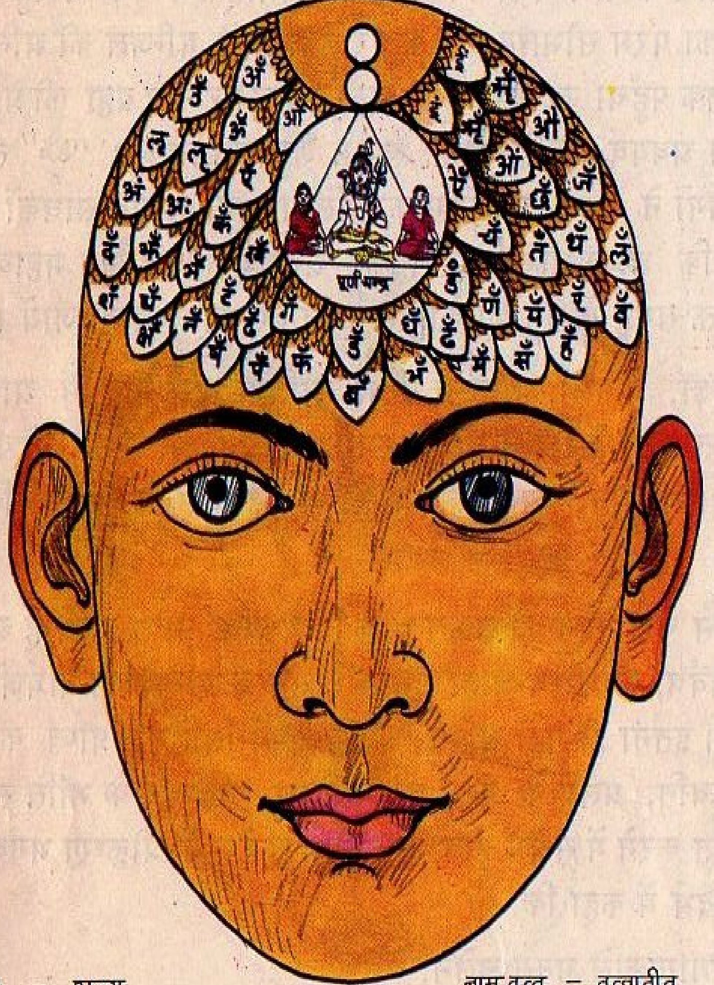

नाम चक्र — शून्य
स्थान — मस्तक
दल — सहस्त्र
दलों के अक्षर – अँ से क्षँ तक
लोक — सत्य

नाम तत्व – तत्वातीत
तत्व बीज – विसर्ग
बीज का वाहन - बिन्दु
देव – परब्रह्म
देवशक्ति – महाशक्ति
यंत्र – पूर्णचन्द्र निराकार
ध्यानफल – अमर, मुक्त, उत्पति पालन में समर्थ, आकाशगामी और समाधियुक्त होता है।

चित्र 20

6.4.11.मानसिक तनाव

अधिकतर मानसिक रोग भावनात्मक अंसतुलन, नाड़ी संस्थान रोगों का मुख्य कारण हैं। गलत विचार जैसे गुस्सा, चिन्ता, घृणा, निराषा, लालसा और धोखा आदि रोगों और कष्टों का मुख्य कारण है। द्वेष और ईर्ष्या नाड़ी शक्ति को दीमक की तरह खाकर खोखला कर देती है।

चिन्ता ही एक ऐसा कारण है जो सही पुरूष के सौन्दर्य को शीघ्रता से नष्ट करती है तथा उसे कम उम्र में ही वृद्ध बना देती है और चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं।

6.4.12. मानसिक तनाव के कारण

- अस्वस्थ शरीर।
- तुलनात्मक दृष्टिकोण एवं प्रतिस्पर्धा, कड़वाहट व ईर्ष्या की भावना।
- नकारात्मक नजरिया, कार्य की अधिकता, असफलता का भय।
- बेकारी एवं अन्य वित्तीय समस्याऐं।
- इच्छाओं का पूर्ण न होना अत्यधिक महत्वकांक्षी स्वभाव।
- किसी भी प्रकार का नषा।
- असुरक्षित वातावरण एवं असहयोगी सहकर्मी।
- दूसरों की बात में आसानी से आ जाना।
- गैर कानूनी काम–धन्धा, रूखे स्वभाव वाला साथी।
- भावुक होना व छोटी–छोटी बातों को दिल से लगाना।
- कार्यस्थल पर शोर–षराबे वाला माहौल।
- नीचे काम करने वाले अयोग्य लोग।
- यौन सम्बन्य या प्रेम सम्बन्धों में विफलता।
- अपमान, तानाजनी एवं नाराजगी।
- असत्य बोलना, टेलीविजन द्वारा अवचेतन मन पर दुष्प्रभाव।

6.4.13. मानसिक तनाव के लक्षणः

- नींद न आना या नींद का बार–बार टूटना या खराब स्वप्न इत्यादि।
- चिड़चिड़ापन एवं क्रोध, सिर दर्द या सिर भारी रहना।
- किसी भी प्रकार का नषा करना।
- अपनी समस्याओं को गाते रहना।
- किसी भी विषय या काम में मन न लगना।
- समय खराब करना तथा काम टालना।
- नाखून चबाना, नकारात्मक सोच।
- बेमतलब के उल्टे सीधे विचार आना।
- बड़ी–बड़ी ड़ींगे हांकना।
- किसी भी समस्या के आते ही घबरा जाना।
- अनिष्ट की आषंका बने रहना।
- याद्दाष्त कमजोर होना, असावधानी से वाहन चलाना।
- समाजिक, पारिवारिक एवं व्यावसायिक कार्यों में रूचि न लेना।
- असुरक्षा की भावना बैठे–बैठे घुटने हिलाना।
- बार–बार उत्तेजक पदार्थ चाय, कॉफी इत्यादि लेना।
- जल्दी–जल्दी पलकें झपकना।
- संकोची स्वभाव आदि।

6.5. शारीरिक स्वास्थ्यः—

रसवैद डॉ. प्रेमदत्त पाण्डेय, सन् 1999, ''स्वास्थ्य रक्षक'' के अनुसार— इससे पहले हमने मानसिक स्वास्थ्य पर चर्चा की अब हम आगे शारीरिक स्वास्थ्य के बारे में चर्चा करेंगे—

आयुर्वेद ने सब से अधिक महत्व शरीर की रक्षा और उसका उचित विधि से पालन किए जाने को दिया है।

चरक संहिता में कहा गया है।

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत।

तद्भावेहि भावानं सर्वभावः शारीरिणाम।।

(चरक संहिता निदान 6/7)

अर्थात् अन्य सभी कार्यों को छोडकर शरीर का पालन करना चाहिए, क्योंकि शरीर का अभाव हो जाने पर सभी वस्तुओं का अभाव हो जाता हैं। क्योंकि हमारा शरीर ही अगर नहीं रहा तो ये दुनियाँ हमारे किस काम की रह जाएगी। इसीलिए कहा भी गया है कि ''जान है तो जहान है।''

स्वास्थ्य क्या है और स्वास्थ्य किसे कहते हैं ? इस प्रष्न का जितना सटीक और युक्तियुक्त उतर आयुर्वेद ने दिया है, उतना विष्व के किसी भी चिकित्सा शास्त्र ने नहीं दिया।

स्वास्थ्य की परिभाषा सुश्रुत संहिता ने इस प्रकार की है—

समदोषः समाग्निश्य समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्दियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

(सुश्रुत संहिता सूत्र 15/48)

अर्थात् जिस व्यक्ति के शरीर में तीनों दोष(वात, पित, कफ) साम्य अवस्था में हों, पंचमहाभूत(अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकार) की पांच, सप्त धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) की सात और तेरहवीं जठर की अग्नि ये तेरह अग्नियाँ समान हों, रस, रक्त आदि सातों धातु पुष्ट व सम्मान हों, मलमूत्र विसर्जन

क्रिया ठीक हो, आत्मा, इन्द्रियां व मन प्रसन्न अवस्था में हों, उसी व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है।

शरीर को धारण करने वाले तत्व को ''धारणाद्धातवः स्मृता'' के अनुसार धातु कहा जाता है और रोग पैदा करने वाले तत्व को दोष कहा जाता है। शरीर में जब वात, पित, कफ तीनों समान और शांत अवस्था में रहते हैं तब शरीर को धारण करने वाले होने से ये धातु कहे जाते हैं लेकिन जब ये विषम और कुपित अवस्था में होते हैं तब दोष कहे जाते हैं और रोग पैदा करते हैं। इन तीनों का विषम या कुपित होना ही रोग है। इन तीनों को ही त्रिदोष कहा जाता है।

चरक संहिता में कहा गया है–

विकारो धातुवैषम्ये साम्ये प्रकृतिरूच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुखमेव च।।

(चरक संहिता सूत्र– 9/4)

अर्थात् धातुओं की विषम स्थिति ही विकार है। धातुओं की साम्य अवस्था का नाम प्रकृति यानि स्वस्थ अवस्था है, आरोग्य का नाम सुख है और विकार ही दुख का कारण है।

इन तीनों दोषों में वात दोष प्रमुख है क्योंकि शेष तीनों दोष वात के सहयोग से ही शरीर में यत्र–तत्र गमन और क्रिया करते हैं।

आयुर्वेद में कहा है–

पितं पगुं कफः पगुं पंगवों मल धातवः।
वायुनायत्र नीयते तत्र गच्छति मेघवत।।

(शारंगधर संहिता 5–25)

अर्थात् पित कफ तथा देह के मल व धातुएं ये सब पंगु हैं ये स्वयं ही देह में एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं जा सकते। इन्हें वात ही जहाँ–तहाँ ले जाता हैं। जिस प्रकार वायु आकाष में बादलों को इधर–उधर ले जाती है।

ऋतु के प्रभाव से भी इन दोषों का संचय, प्रकोप और शमन होता रहता है।

(अ)वात– यह ग्रीष्म ऋतु में संचित, वर्षा ऋतु में कुपित और शरद ऋतु में शांत रहता है।

(ब)पित– यह वर्षा ऋतु में संचित, शरद ऋतु में कुपित और हेमंत ऋतु में शांत रहता है।

(स)कफ– यह हेमंत ऋतु में संचित, बसंत ऋतु में कुपित और ग्रीष्म ऋतु में शांत रहता है।

6.5.1 संपूर्ण स्वास्थ्य

डॉ. बृज भूषण गोयल सन् (2010) के ''स्वास्थ्य परीक्षण'' के अनुसार– शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होना ही संपूर्ण स्वास्थ्य है।

6.5.2. संपूर्ण स्वास्थ्य की पहचान के मुख्य लक्षण

- गहरी नींद आती हो।
- प्रातः उठने पर तन–मन में स्फूर्ति एवं उत्साह हो।
- शौच साफ बंधा हुआ और नियमित होता हो।
- प्राकृतिक भूख लगती हो।
- सारा दिन काम में उत्साह रहता हो।
- पेट छाती से कम हो।
- मादक व उतेजक पदार्थों की चाह न हो।
- मन प्रसन्न एवं हृदय सदैव स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण हो।
- बिना थके कई घण्टों काम करने की क्षमता हो।
- रचनात्मक कार्यों में लगे रहने की प्रवृति हो।

- वाणी मधुर हो।
- चेहरे से कांती झलकती हो।
- आंखों में चमक एवं निर्भीकता हो।
- हर अवस्था में चेहरे पर मुस्कान हो।
- सदा यौवन व नवशक्ति की अनुभूति रहे।
- सकारात्मक विचार हों।
- सभी शारीरिक क्रियाएं सामान्य हों।
- पसीना, मल–मूत्र एवं अपान वायु दुर्गंध रहित हो।
- रीढ़ की हड्डी सीधी हो।
- त्वचा मुलायम एवं चिकनी हो।
- सर्दी–गर्मी आदि सहने की क्षमता हो।
- क्रोध, शोक, भय, चिंता आदि मानसिक तनाव एवं उद्धेग न हो।
- चित्त शांत हो।
- सुख–दुःख में विचलित न हों।
- निर्णायक शक्ति, विवेचना शक्ति और धारणा शक्ति बनी रहे।

6.5.3. अस्वस्थ शरीर की पहचान

- किसी भी शारीरिक क्रिया का असामान्य होना।
- गहरी नींद न आना या हर समय नींद आना।

- मल पतला या गांठ के रूप में होना।
- भूख न लगना या हर समय भूख लगना।
- मिर्च मसाले खाने की इच्छा होना।
- शरीर से दुर्गंध आना। मल, मूत्र, पसीना, अपान वायु एवं सांस में दुर्गंध होना।
- पेट छाती से बडा होना।
- खाने के बाद भारीपन व भांति–भांति की तकलीफें होना।
- सिर के बाल गिरना और गंजापन होना।
- नकारात्मक विचारों का होना।
- विध्वंसात्मक कार्यों में प्रवृति होना।
- शीघ्र क्रोध आना।
- चिड़चिड़ापन, आलस्य रहता हो।
- किसी कार्य में मन न लगना, जल्दी थकान हो जाना।
- किसी भी नषीले पदार्थ का सेवन करना।
- भौंहों के ऊपर, आंखों की पलकों, भौहों और ऊपरी पलकों के बीच आंखों के नीचे इत्यादि पर सूजन।
- चेहरे पर चकते, फोड़े–फुंसी या कोई दाग होना।
- सिर में दर्द रहना।
- शरीर का तापमान असामान्य रहना।
- चेहरे व त्वचा का रंग पीला, लाल या मुरझाया हुआ रहना।
- असमय आंखें कमजोर और बाल सफेद हो जाना।

➢आंखों के चारों ओर कालापन रहना।

➢हमेषा मानसिक तनाव रहना।

➢गर्दन, हाथ, पांव की नसें उभरी हुई हो।

➢सर्दी या गर्मी अधिक लगती हो।

6.6. योग के द्वारा परिपूर्ण स्वास्थ्य

6.6.1 योग चिकित्सा (Yoga Therapy)

योगषास्त्र महर्षि पतञ्जलि की भारतीय दर्षन को एक अमूल्य देन है। मुख्यतः योगषास्त्र कोई चिकित्सा शास्त्र नहीं है। यह तो आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण पथ प्रदर्षक है। ''आत्मा अथवा परमात्मा'' मन, बुद्धि और इंद्रियों से अलग एक स्वतंत्र एवं शाष्वत सत्ता है, यह ज्ञान प्राप्त करने में योग बहुत सहायक हैं। गीता का तो पूरा चौथा अध्याय ही योग पर है। भारत में अनेकों प्रकार के दर्षन प्रचलित हैं। इन सभी दर्षनों के अनुसार अध्यात्मिक सत्य भीअलग–अलग है। योग इन सभी मान्य आध्यात्मिक सत्यों तक पंहुचने के लिए मुख्य साधन है। यही कारण है कि भारत की सभी धार्मिक पद्धतियों व सम्प्रदायों में योग को समान महत्व दिया गया है।

योग से व्यक्ति का सर्वांगिण विकास होता है और जब सर्वांगिण विकास होता है तब अस्वस्थ होने का प्रष्न ही पैदा नहीं होता है। इसी को जीवन में उतारना या उपयोग करना ही संपूर्ण स्वास्थ्य या संपूर्ण योग पद्धति कहलाता है। मनुष्य के शरीर में प्याज के छिलके की भांति पांच आवरण माने गए हैं। इन पांचों को विकसित करना ही संपूर्ण योग पद्धति हैं।

6.6.2. संपूर्ण योग चिकित्सा पद्धतिIterative Approach of Yoga Therapy(IAYT)

कोष का नाम	मुख्य घटक	त्रुटि	मूल प्रकृति	उपचार
1. अन्नमय कोष	भोजन, अन्न	तामसिक असंतुलित	सात्विक संतुलित	आसन, क्रिया, षिथिलीकरण सूर्यनमस्कार, भोजन और विश्राम
2. प्राणमय कोष	प्राण	तेज असंतुलन	धीमा संतुलन	क्रिया, कपालभाति, श्वासन, व्यायाम, प्राणायाम(PET)
3. मनोमय कोष	मन	अशांत द्वादात्मक कुटिल भौतिक	शांत, स्थिर, साफ, कोमल	धारणा, ध्यान, समाधि, MSRT, MIER, MEMT
4. विज्ञानमय कोष	ज्ञान	अज्ञान ज्ञानकारियों का अभाव	ज्ञान	स्वाध्याय, सतसंग
5. आनन्दमय कोष	आनंद	दुःख	सुख या आनंद	आनंद मेला (Happy Assembly), त्याग, सेवा, कर्मयोग प्रकृति के साथ (Tuning to Nature)

डॉ. बी. टी. चिदानंद मूर्ति सन् (2010) ''समग्र स्वास्थ्य के लिए योग'' के अनुसार–

- **अन्नमय कोष**– यह प्रथम कोष है जो सकल रूप से भौतिक शरीर है। यह सिर्फ भौतिक पदार्थों अर्थात् अस्थि, पेषियों तथा चर्म को संघटन नहीं है। वस्तुतः मानव की संपूर्ण संरचना में इसके व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों पक्ष अन्तर्निहित हैं। इसकी संरचना पांच तत्वों से मिलकर बनी है। हमारे द्वारा ग्रहण किए गए भोजन से इनका पोषण होता है और इनमें उत्पन्न दोष रचनात्मक एवं कार्यात्मक विकारों के रूप में दिखाई देते हैं। जब यह ठीक नहीं होता तो इसका प्रभाव अन्य चारों कोषों पर भी पड़ता है।
- **प्राणमय कोष**– प्राणमय कोष इस ब्रह्माण्ड का मौलिक ढांचा है जो व्यक्ति के बाह्य तथा अभ्यांतर दोनों परिवेषों में अवस्थित है। इसकी विकृति से शरीर में अनेकों प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसको ठीक रखने से प्राण व उपप्राण के रोग उत्पन्न नहीं होते।
- **मनोमय कोष**– यह मानसिक शरीर है जो मानसिक कार्यों जैसे अनुभव विष्लेषण, स्मृति तथा आवेग के लिए उत्तरदायी है। मन विचारों का ऐसा समूह है जो संवेदी अंगों द्वारा प्राप्त अनुभवों के प्रति अनुक्रिया करता है। इसका मुख्य घटक मन होता है। मन के रोग मन चंचल, भौतिक द्वंदात्मक, कुटिल आदि होता है। उसे शांत, संतुलित व निर्मल बनाया जा सकता है। जिससे मनोमय कोष पूर्णतया ठीक रह सके।
- **विज्ञानमय कोष**– इसका मुख्य घटक ज्ञान–विज्ञान व जानकारी से है। अज्ञानता को दूर कर ज्ञान प्राप्त कर, इस कोष को सक्रिय रखा जा सकता है। इस स्तर पर व्यक्ति में विभेद एवं निर्णय क्षमता उत्पन्न होती है। इसका उद्देष्य मानव व्यवहार को प्रकृति से समायोजित करते हुए उतम स्वास्थ्य की दिषा में गति प्रदान करना है।
- **आनंदमय कोष**– यह सभी कोषों के मध्य संतुलन बनाए रखता है। जिससे व्यक्ति संपूर्ण समरसता का अनुभव करता है। इस अवस्था में

व्यक्ति को आनंद की अनुभूति होती हैं। जब पाँचों कोष अपना कार्य ठीक से करते हैं या परिपूर्ण है तब प्रत्येक कार्य में आनंदानुभूति होती है और यही मानव जीवन का मूल लक्ष्य है। इस प्रकार इन पांचों आवरणों को ठीक रखकर हम संपूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं।

6.6.3. योग के द्वारा स्वास्थ्य

अष्टांग योग के मुख्य रूप से आठ अंग हैं।

- यम– अर्थात् आत्म संयम।
- नियम– अर्थात् धार्मिक कृत्यों का आचरण।
- आसन– अर्थात् शारीरिक स्थिरता।
- प्राणायाम– अर्थात् श्वास प्रष्वास पर नियंत्रण।
- प्रत्याहार– अर्थात् इंद्रिय निग्रह तथा इंद्रियों को अंतर्मुखी करना।
- धारणा– अर्थात् चित्त की स्थिरता।
- ध्यान– अर्थात् चिंतन अथवा समस्त मानसिक शक्ति का एक ही विषय पर केंद्रिकरण।
- समाधि– अर्थात् शक्ति का एक ही विषय पर केंद्रिकरण। ध्यान की गहन स्थिति।

6.6.4. यम के द्वारा स्वास्थ्यः–

योग की पहली सीढ़ी यम है जो एक निषेधात्मक आचरण है। इसके पांच अंग हैं; अहिंसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह।

अहिंसासे किसी भी मनुष्य को शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट नहीं पंहुचता,

सत्य झूठ न बोलने से किसी की हानि नहीं होती है।

अस्तेय– अन्यायपूर्ण किसी दूसरे का अधिकार व धन छिनना।

अपरिग्रह– आवष्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह नहीं करना। जिससे प्रत्येक व्यक्ति को विलक्षण शांति होगी तथा किसी को किसी प्रकार की चिंता व तनाव नहीं होगा और अनेक रोगों के कारण चिंता से मुक्ति प्राप्त होगी।

ब्रह्मचर्य– वीर्य की रक्षा योग व आयुर्वेद की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। दूसरा अर्थ मन पर नियंत्रण से भी है। इस प्रकार **यम** के सभी अंगों का निषेधात्मक होने पर शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए अति उपयोगी है। इसलिए **अहिंसा** का पालन करने वाले का कोई शत्रु नहीं होता, **सत्य** बोलने वाले की भविष्यवाणी सही होती है। **अस्तेय** का पालन करने वाले को सभी भौतिक सम्पदाएं प्राप्त होती हैं। **ब्रह्मचर्य** का पालन करने वाले को अलौकिक शरीर और मानसिक शक्ति प्राप्त होती है। **अपरिग्रह** का पालन करने वाले को जन्म व मृत्यु के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

6.4.5. नियम के पालन से स्वास्थ्य–

नियम दूसरा अंग है। जिस प्रकार यम निषेधात्मक प्रकृति के हैं वहीं नियम विधेयात्मक प्रकृति के हैं। नियम के भी पांच अंग हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईष्वर प्रणिधान। इस प्रकार नियमों का पालन करने वाले मनुष्य का शरीर व मन स्वस्थ रहता है।

शौच– शौच का अर्थ है पवित्रता शरीर को बाहर व भीतर से (मन, चित) आदि से पवित्र रखना। जल व औषधियों आदि के प्रयोग से शरीर को स्वच्छ रखना। जिससे मनुष्य का मानव शरीर स्वस्थ रहता है।

संतोष– पूरे प्रयत्न व पुरूषार्थ के पष्चात् किए हुए कर्म का जो भी फल मिले उससे संतुष्ट रहना। यह व्यक्ति को सभी प्रकार की भागदौड़ चिंताओं व तनावों से मुक्त रखता है।

तप– तप का अर्थ है अपने उद्येष्य को प्राप्त करने के लिए जितने भी विघ्न बाधाएं, कष्ट क्लेष आएं उनको प्रसन्नतापूर्वक सहना।

स्वाध्याय– स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं के बारे में, आत्मा व परमात्मा के बारे में जानना तथ्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना। इससे मन को शांति मिलती है तथा जीवन की अनेक समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती हैं।

ईश्वर प्रणिधान– मनुष्य जो भी कर्म करें, उन सभी कर्मों को फल सहित ईष्वर को समर्पित कर देना ही अनन्य भक्ति है। इस प्रकार नियमों के पालन से व्यक्ति को असाधारण क्षमताएं प्राप्त होती हैं। जैसे– शौच के पालन से मनुष्य के भीतर अनाषक्ति की भावना आती है। संतोष से असीम प्रसन्नता प्राप्त होती है। तप से इंद्रियों की सभी प्रकार की मलिनताएँ नष्ट होती हैं। स्वाध्याय के करने से व्यक्ति को ईष्वरीय संरक्षण प्राप्त करने में सहायता मिलती है। ईष्वर प्रणिधान समाधि अवस्था प्राप्त करने में सहायक है।

6.6.6. आसनों के द्वारा स्वास्थ्य–

आसन योग का तीसरा अंग है। जिसका अर्थ है षारीरिक मुद्रा। अर्थात् जिस स्थिति में मनुष्य स्थिररूप से एवं सुविधापूर्वक लम्बे समय तक बैठ सके उसे ही आसन कहते हैं। ये सभी आसन विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओं की षारीरिक मुद्राओं अथवा चेष्टाओं पर आधारित हैं यह आसन जहाँ शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं, वहीं अनेकों बिमारियों को भी दूर करते हैं। ये आसन शरीर की अंतः स्रावी ग्रंथियों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। परिणाम स्वरूप ग्रंथियों का स्राव सुचारू रूप से होने लगता है। जिससे यकृत, पैंक्रियाज, हृदय, गुर्दे, मूत्राषय, आमाषय, आंतें आदि नियमित रूप से कार्य करने लगते हैं और अनेकों बिमारियों से छुटकारा मिल जाता है। अनुभव है कि शारीरिक व मानसिक कारणों से ही अंतःस्रावी ग्रंथियों में अनियमितता आती है।

इस प्रकार से आसन अनेकों असाध्य व भयंकर माने जाने वाले रोगों को भी दूर कर देते हैं। जैसे– मयूरासन पुराने दस्त व ग्रहणी दोष को दूर करता है। अर्द्धमत्स्येन्द्रासन मधुमेह को दूर करता है। भुजंगासन कटि पीड़ा, श्वास दमा, रीढ़ व आंखों को शक्ति प्रदान करता है।

6.6.7. प्राणायाम से स्वास्थ्य–

प्राणायाम से अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं। प्रकृति के अनुसार अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग प्राणायाम लाभदायक व प्रभावी होते हैं।

वात, कफ के लिए भस्त्रिका, अभ्यांतर (आंतरिक) कुंभक लाभदायक हैं।

पित प्रकृति वालों के लिए, शीतली, सीतकारी व सदंता तथा रेचक से तीनों दोष शांत हो जाते हैं। इसके अलावा प्राणायाम से शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ती है। जिससे अनेकों रोग जैसे– श्वास, कास, दमा तथा हृदय रोग ठीक होते हैं। प्राणों पर नियंत्रण से मानसिक शांति मिलती है तथा मनोदैहिक रोग जैसे– मधुमेह, एक्जिमा, दमा, सोरायसिस आदि ठीक हो जाते हैं। प्राणायाम हृदय एवं रक्त वाहिनियों की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाता है। इससे उच्च व निम्न रक्तचाप व हृदय रोग तक ठीक हो जाते हैं।

6.6.8. प्रत्याहार के द्वारा स्वास्थ्य–

प्रत्याहार का अर्थ है रूप, स्पर्ष, शब्द, गंध, रस, आदान, प्रत्यादान, बोलना, काम–क्रोध, मोह, लोभ, राग, द्वेष, संषय, शोक भ्रांति, भय आदि सभी इंद्रियों के विषयों से मन को हटाकर मनके स्वरूप में ही स्थिर करना। इसके अभ्यास से मनुष्य क्रोध, शोक, भय आदि सभी मानसिक क्लेषों से मुक्त हो जाता है तथा उन्माद व अनिद्रा आदि से बचा रहता है व इन सभी के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

6.6.9. षट्कर्म द्वारा स्वास्थ्य

आसनों से पूर्व षट्कर्म का अभ्यास शारीरिक तैयारी के रूप में अति आवष्यक है। ये छः क्रियाएं हैं षट्कर्म शरीर को आसन व प्राणायाम के लिए तैयार करते हैं।

इनके अभ्यास से शरीर की मलिनता दूर होती है तथा अनेक रोगों से छुटकारा मिलता है। जैसे– नेति (जलनेति, सूत, रबर) से पुराने से पुराना जुकाम, एलर्जी, गलतुण्डी एवं टांसिल आदि दूर होते हैं। धौती व कुंजल से आमाषय व उदर की मलिनता दूर होती है। इसके अभ्यास से पुराना अम्लपित, कब्ज, आमाषय व फेफडों में जमा बलगम बाहर निकल जाता है। वस्ति व नौलि से पेट की समस्त व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

6.6.10. अन्तः स्त्रावी ग्रंथियां और स्वास्थ्य

मानव शरीर एक अत्यधिक जटिल यंत्र है। इसके भीतर लगातार अनेक प्रकार की रासायनिक क्रियाएं एक साथ चलती रहती हैं और अनेक ग्रंथियां विभिन्न रासायनिक यौगिकों का उत्पादन करती हैं। इन ग्रंथियों से जो रासायनिक स्राव उत्पन्न होता है। वह किसी विषेष कार्य के लिए ही स्रावित होता है। मानव शरीर के भीतर दो तरह की ग्रन्थियां होती हैं। कुछ का रस नलिकाओं द्वारा जाता है। कुछ नलिका विहीन होती हैं।

मानव शरीर में इन दोनों के अलावा कुछ ऐसी ग्रंथियाँ होती हैं जिनका स्राव न तो सीधे किसी अंग में गिरता है और न उनमें से कोई नलिका ही निकलती है। ऐसी ग्रंथियाँ अपने रासायनिक द्रव्यों को अपने में से निकलने वाली रक्त–कोषिकाओं के रक्त में सीधे स्रावित कर देती हैं। ऐसी ग्रंथियों को अन्तःस्रावी ग्रंथियां कहते हैं। इनके स्राव को हारमोन कहते हैं। यह स्राव रक्त में मिलकर एक प्रकार की उत्तेजना देता है। इस रसायन का शारीरिक घटनाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

6.6.11 ग्रंथियों का महत्व

मनुष्य जीवन की क्रियाओं व घटनाओं से इन ग्रंथियों के स्राव का गहरा संबंध है। किसी भी स्त्री के डिम्बाषय से उसके जीवनभर में लगभग एक डाक टिकट के वजन के बराबर स्राव होता है। इसी की बदौलत एक कन्या, स्त्री व स्त्री, मां बन जाती है। इसी प्रकार अवटु ग्रंथि से मनुष्य के जीवनभर में मात्र एक चाय

की चम्मच के बराबर अंतः स्राव निकलता है। लेकिन इसकी कमी से आदमी बौना या हृष्ट–पुष्ट बन सकता है।

डॉ. जे. पी. एन. मिश्रा सन् (2005) ''मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान के अनुसार–अंतःस्रावी ग्रंथियों की अधिकता व कमी से होने वाले परिणामों की व्याख्या नीचे एक सारणी द्वारा की जा रही है–

अन्तःस्रावी ग्रंथियों की अतिसक्रियता एवं अल्पसक्रियता के परिणामों का विवरण				
ग्रंथि	सामान्य से अधिक सक्रियता		सामान्य से कम सक्रियता	
	रोग	अभिव्यक्तियां	श्रोग	अभिव्यक्तियाँ
अग्रपीयूष	महाकायता अतिशयता लैंगिक काल पूर्वक्कता	अप्रत्यासित लंबाई चेहरे, जबड़े, हाथ–पांवों की अति वृद्धि एवं मधुमेह रोग समय से पूर्व लैंगिक परिपक्वता	वामनता षिषुकायता	कम ऊंचाई लघुता के साथ लैंगिक मंदता
पश्चपीयूष			उदकमेह	बार–बार एवं अधिक पेषाब करना एवं अत्यधिक प्यास लगना
अवटु	नेत्रोत्सेधी और घेंघा रोग	दुर्बलता, उदग्र आंखे, अधीरता, अनार्तव, गले पर	मिक्सिडीम	शरीर में सूजन, बालों का झडना,

		थैली का बनना	वामनता	सुस्ती, अत्यार्तव षिषु की मंद वृद्धि
परावटु	परावटु अतिसक्रियता	वृक्क की अष्मरी, कमजोर अस्थियां	परावटु अल्पक्रियता	टेटनी अथवा अनैच्छिक पेषी स्फुरण
अधिवृक्क प्रांतस्था अधिवृक्क अंतस्था	कुशिंग संलक्षण अबुंद	मोटापा, रक्तचाप का बढना, मधुमेह उच्च रक्त चाप, मधुमेह	एडिसन रोग	कमजोरी, अंषक्तता, वर्णकता, अल्परक्तदाब
अग्नाषय	उच्च इंसुलिन स्राव	रक्त में शर्करा की कमी	मधुमेह	रक्त एवं मूत्र मे शर्करा की अधिकता, मोटापा, त्वचा संक्रमण
पीनियल			कालपूर्व किषोरवय	पुरूषोचित अथवा स्त्रियोचित गुणों का समय पूर्व विकास
थाइमस	लसिका ऊतकों का परिवर्धन	अधिक संख्या में लिम्फोसाइट(ष्वेत रक्त कणिका) का उत्पादन	अल्प लसिका ऊतक विकास	रोग प्रतिरोध क्षमता में कमी

इन अन्तः स्रावी ग्रंथियों के स्रोवों को ठीक करने के लिए 'लेष्याधान' अति आवष्यक है। जिसमें चित्त को शरीर की पांच अंतः स्रावी ग्रंथियों पर केंद्रित करते हुए वहां पर विषेष रंग व भावना का अनुभव कर उसके स्रावों को नियंत्रित किया जा सकता है जो निम्न प्रकार है–

क्र. सं.	केन्द्र का नाम	ग्रन्थि का नाम व स्थान	रंग का ध्यान	भावना या मानसिक निर्देष
1.	आनन्द केन्द्र	थयमस ग्रन्थि	पन्ने की भांति या हरी पत्ती की भांति हरे रंग की कल्पना	तीन बार मानसिक जाप भावधारा निर्मल ले रही है।
2.	विशुद्धि केन्द्र	थायरायड व पराथायरायड ग्रन्थियां	गले पर नीले रंग का	तीन बार मानसिक जाप, इच्छाएं, वामनाएं अनुषासित हो रही है।
3.	दर्शन केन्द्र	पीनियल ग्रन्थि	अरूण रंग	तीन बार मानसिक निर्देष अंतर दृष्टि जाग्रत हो रही है।
4.	ज्ञान केन्द्र	पीयष ग्रन्थि	पीला रंग	तीन बार मानसिक जाप, ज्ञान तंतु सक्रिय हो रहे है।
5.	शांति केन्द्र	हाइपोथेलेमस	पूर्णिमा के चांद की भांति श्वेत रंग	तीन बार मानसिक निर्देष, आवेग, आवेष, भय, क्रोध, कुण्ठाए सब शांत हो रहे है। आनन्द की अनुभूति हो रही है।

6.6.12 लेश्या ध्यान और स्वास्थ्य–

लेष्या ध्यान के लाभ – उपरोक्त तालिका में लेष्या ध्यान को व्यक्त किया गया है। लेष्या ध्यान में तीन चीजें मुख्य होती हैं।

लेष्या तंत्र – ग्रिन्थ तंत्र– क्रिया तंत्र

हमारे जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, वे सारे लेष्या तंत्र से ही निर्मित होते हैं। लेष्या तन्त्र हमारे संचित कर्म या संस्कारों का झरना है। अध्यवसाय के अनेक स्पन्दन अनेक दिषाओं में आगे बढ़ते हैं। ये चित्त पर उतरते हैं। उनकी एक भाव धारा है यह धारा रंग से प्रभावित होती है, रंग के स्पन्दनों के साथ जुड़कर भावों का निर्माण करती है। वहीं हमारा भावतन्त्र या लेष्यातन्त्र है। कर्म के प्रवाह का बाहर आने का माध्यम है– हमारा अन्तः स्रावी ग्रन्थितंत्र जब लेष्या भावित अध्यावसाय आगे बढ़ते हैं, तब ये हमारे अन्तः स्रावी ग्रन्थितंत्र को प्रभावित करते हैं। संचित कर्म का अनुभाग रसायन बनकर ग्रन्थितंत्र के माध्यम से हार्मोन्स के रूप में प्रकट होता है। हार्मोन्स रक्त संचार तंत्र के द्वारा नाड़ी तंत्र और मस्तिष्क के सहयोग से हमारे अन्तर्भाव, चिन्तन, वाणी, आचार और व्यवहार को संचालित और नियन्त्रित करते हैं। इस प्रकार ग्रन्थितंत्र हमारे सूक्ष्म अध्यावसाय तन्त्र और स्थूल के बीच परिवर्तक (ट्रान्सफोर्मर) का कार्य करता है। यही हमारे चैतन्य और शरीर के बीच की कड़ी है जो हमारी चेतना के अति सूक्ष्म अमूर्त आदेषों को भौतिक स्तर पर परिवर्तन कर देता है और उसे मन व स्थूल शरीर तक पंहुचा देता है।

6.6.13. लेश्या से व्यक्तित्व का रूपान्तरण

हमारे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले आचार्यों ने आत्मषोधन की प्रक्रिया को बड़े सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है कि यदि हम समझ कर उसका उपयोग करें तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को बदलने में आसानी हो जायेगी। लेष्या के शोधन से ही जीवन में धर्म सिद्ध होता है। जब काली, नीली व हरी– ये लेष्याएँ बदल जाती हैं और इन की जगह तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन लेष्याएँ उदित होती हैं, तब परिवर्तन घटित होता है लेष्या के शोधन के बिना जीवन नहीं बदल सकता। इसलिए व्यक्तित्व परिवर्तन के लिए लेष्या ध्यान अति आवष्यक है।

6.6.14. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा स्वास्थ्य

मुनिकिशनलाल (2003) प्रेक्षाध्यान, आसन, प्राणायाम के अनुसार–

प्राण को जाग्रत एवं सक्रिय बनाने के लिए अनेक विधियाँ हैं। लेकिन ''चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा'' एक उतम विधि है। इस में केंद्रित मन से उर्जा के उत्पन्न होने वाले स्थानों पर ध्यान दिया जाता है। उत्पन्न उर्जा को दर्षन केन्द्र पर ले जा कर उसके विभिन्न प्रयोग किए जाते हैं।

प्राण शक्ति के प्रयोग से चेतना पर आए संस्कार विलीन होने लगते हैं। संस्कार विलीन से स्वभाव में अद्भुत परिवर्तन आने लगते हैं वृत्ति में करूणा, कोमलता एवं सहजता प्रस्फुटित होने लगती हैं। इसके प्रयोग से स्वास्थ्य उतम बनने लगता है। रोग की उत्पति प्राणषक्ति के प्रवाह की विषमता से होती है। प्राण प्रयोग से प्राण शक्ति का विकास होने लगता है।

प्राण केन्द्र और उनके जागरण के लिए ''चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा'' चैतन्य केन्द्र शरीर के विभिन्न स्थलों में है।

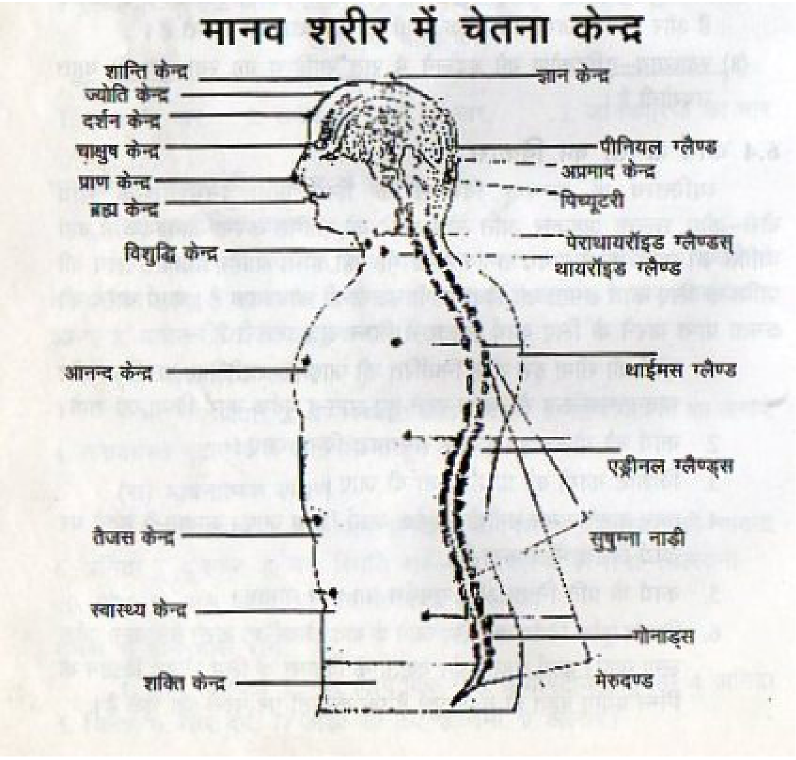

चित्र 21

6.6.15. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के मुख्य तीन परिणाम–

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा चैतन्य केन्द्र निर्मल हो जाता है। आनन्द केन्द्र जो सोया पड़ा है, मूर्च्छित हो गया है, वह जाग जाता है व शक्ति का संस्थान अवरूद्ध हो रहा है, बाधाओं व विष्व से प्रताड़ित हो रहा है, वह फिर सक्रिय हो जाता है व ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। इस प्रकार चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा से चैतन्य केन्द्रों में निर्मलता आती है। आनन्द व शक्ति का जागरण होकर व्यक्तित्व व स्वास्थ्य में परिवर्तन आता है।

6.6.16. त्राटक और स्वास्थ्य

त्राटक ध्यान साधना का एक पूर्व अभ्यास है। ध्यान की गहराइयों में उतरने, एकाग्र, भूत, भविष्य को जानने दृढ़ मानसिक शक्ति, इच्छा शक्ति के लिए त्राटक क्रिया बहुत ही महत्वपूर्ण है तथा इसके साथ–साथ आँखों की समस्या जैसे आँखों का आना, आँखों की दृष्टि का कम होना आँखों की एलर्जी तनाव, आदि के लिए त्राटक एक महत्वपूर्ण क्रिया है।

त्राटक से मास्टर ग्रंथि (पीयूष ग्रन्थि) व पिनियन को सक्रिय करने की महत्वपूर्ण विधि है। जिससे अनेकों प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगों को दूर करने में सहयता मिलती है। त्राटक से बच्चों का भय अनिद्रा–अतिनिद्रा, संकोची स्वभाव, बोलने की क्षमता आदि में आष्चर्यजनक सुधार होता है। व्यक्तित्व विकास के लिए या ध्यान के किसी भी प्रयोग को गहराई से अनुभव करने के लिए त्राटक एक महत्वपूर्ण विधि है।

शास्त्रों में त्राटक कई प्रकार का है लेकिन ''स्वामी विवेकानन्द अनुसंधान संस्थान बैंगलोर'' ने इस पर काफी अध्ययन व शोध किया है। जो निम्न प्रकार है– त्राटक से पहले आँखों की चार प्रकार की अक्षर साईज और प्रत्येक आँख की अक्षर साईज के बाद दोनों हाथों को मसल कर गरम करते हुए आँखों पर रखा जाता है, ताकि आँखों की मांसपेषियों थकान से दूर रहें व आंखों को उर्जा प्राप्त हो।

विधिः—

त्राटक विधि(TRATAKA SESSION)

(अ) प्रार्थना के साथ शुरू करें।

(ब)आंखों की अक्षर साईज।

- आंख के गोलों से ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर देखना बिना पलकें झपकाए 10—10 बार
- दांए से बांए, बांए से दांए देखना — 10—10 बार
- क्रॉस करते हुए दांए से बांए, बांए से दांए देखना — 10—10 बार
- दांए से बाएं गोलाकार, बाएं से दाएं गोलाकार देखना — 10—10 बार
- इसके बाद किसी वस्तु, दीपक, शक्ति चक्र या किसी भी चीज को पूरी एकाग्रता के साथ अपलक, बिना किसी दबाव, तनाव आवेग, आवेष के अपलक देखना होता है, 3—10 मिनट
- इसके बाद 3—10 मिनट जैसा बाहर देखा वैसा ही अंदर दोनों आँखों के मध्य बंद करके देखना होता है।
- अंत में 5 बार से 11 बार भ्रामरी प्राणायाम या 10—20 मिनट शवासन।

ऊँ कार

चित्र 22

शक्ति चक्र

चित्र 23